❀ श्रीश्रीगौरांगविधुर्जयति ❀

सानुवाद

श्रीपदांकदूतम्

श्रीश्रीकृष्णदेवसार्व्वभौमविद्यावागीशमहोदयेन
विरचितम्।

श्रीगोस्वामि राधामोहनशर्म्मणा
विरचितया पदाङ्कदूतविवृत्त्याख्यया टीकया सहितम्।

सम्पादक—
अध्यक्ष—हिन्दी विभाग,
म० स० विश्वविद्यालय बड़ोदा।

प्रथमावृत्ति १०००
फाल्गुन पूर्णिमा
सं० २०१६

प्रकाशक—
कृष्णदासबाबा,
कुसुमसरोवर निवासी (मथुरा)

प्रकाशकस्य वक्तव्यम्

भगवच्चैतन्यमहाप्रभुणा अखिलविश्वजनोपकाराय परिगठिते गौडीयसम्भापितरत्नागारे सुमहार्घ्याणि दिव्यानि साहित्यरत्नानि परिलसन्ति। यस्मिन् भाण्डारे बहूनि काव्यालंकार-व्याकरण-नाटक-छन्दो-चम्प्वादि शास्त्राणि विराजन्ते। सर्वाणि एतानि भगवत्कृष्णपरत्वात् चमत्कारातिशयं मूर्त्तानन्दरसवैचित्र्यं परमवैशिष्ट्यं च परिवेपयन्ति। तेषु श्रीरूपप्रभुविरचिते हंसदूतोद्धवसन्देशाख्ये द्वे दूतकाव्ये श्रीनन्दकिशोरगोस्वामि रचितं शुकदूताख्यं विशालं दूतकाव्यं श्रीकृष्णदेवसार्वभौमविरचितं प्रस्तुतमिदं पदांकदूताख्यं दूतकाव्यं एते चत्वारः दूतकाव्याः परिलसन्ति। विरहिण्याः प्रियजनाय किं वा विरहिणा निजप्रियायै सम्वादप्रेषणमेव दूतकाव्यस्य मूलतथ्यम्। यद्यपि कालिदासादिकविवरैः विरचितानि मेघदूतादिकानि दूतकाव्यानि सुप्रसिद्धानि तदपि भजनरसपरिपोषकत्वात् भजनपरायणसाहित्यसेविजनानामस्माकमेव इमानि दूतकाव्यानि उपादेयानि। मेघदूतादिकं प्राकृतनायकनायिकामेवावलम्ब्य विरचितमतस्माकमेव नोपादेयम्। हंसदूतोद्धवसन्देशौ प्राचीनटीकया भाषामयपद्यगद्यानुवादेन च सह देवनागरीलिपिना मया प्राक् प्रकाशितौ। साम्प्रतं पदांकदूतं प्रकाश्य विद्वज्जनेषु समर्पितम्। अस्य टीकाकारः गोस्वामिराधामोहनशर्म्माख्यः पण्डितप्रवरः। यस्य न्यायादिदर्शनशास्त्रेषु अगाधापारप्रतिभा वर्त्ततेऽस्मान्निरस्याः टीकायाः अनुमिता। बड़ोदाविश्वविद्यालयस्य हिन्दीविभागस्याध्यक्षमहोदयेन कुंवरचन्द्रप्रकाशसिंहेन अस्मिन् ग्रन्थप्रकाशने सम्पादकपदमधिरुह्य तेन दो-शब्दाख्यप्राक्कथनेन ग्रन्थसौष्ठवमलंकृतम्। काव्यरसिका विद्वज्जना इदं दूतकाव्यं परिशीलयन्तु हृदयसम्पुटे धारयन्तु च एषा मम महती प्रार्थना।

इति—

प्रकाशकः

कृष्णदास बाबाजी

कुसुमसरोवर निवासी

(मथुरा)

दो शब्द

श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय में श्रीरूपगोस्वामिविरचित हंसदूत तथा उद्धवसन्देश, श्रीनन्दकिशोरजी गोस्वामि विरचित शुकदूत एवं श्रीकृष्णदेव सार्व्वभौमविरचित प्रस्तुत पदांकदूत ये चारि दूतकाव्य हैं। इन दूतकाव्यों की भाषा संस्कृत काव्य-साहित्य के इतिहास में विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखती है। कालिदास के परवर्त्ती भारवि, माघ और श्रीहर्ष आदि चमत्कारप्रिय महाकवियों ने भाषा को अत्यत अलंकृत और कृत्रिम बना दिया था। वे अनुप्रास के प्रचुर प्रयोग के रूप में वर्ण-विन्यास की विशेषता के प्रदर्शन, श्लेष, यमक आदि के द्वारा शब्दों की क्रीड़ा के सर्जन, काव्यार्थापत्ति, परिसंख्या, विरोधाभास, असंगति के रूप में वाक्य की वक्रता या वचनभंगी के विधान और अनहोनी अथवा दूरारूढ़ कल्पनाओं के विलास को ही कविकर्म की सिद्ध मानने लगे थे। इस परंपरा के कवि अनुभूति की मार्मिकता की उपेक्षा कर उक्ति-वैचित्र्य और शब्द-साम्य के बड़े बड़े खेल-तमाशे जुटाने को ही काव्य का चरम उत्कर्ष समझ बैठे थे। फलतः भाषा और भाव की स्वाभाविकता काव्य की अनित्य धर्म मानी जाकर स्वभावोक्ति नाम का गौण अलंकार मात्र मान ली गई थी। संस्कृत काव्य-क्षेत्र में भाषा और भाव का यह विपर्यय, जो कई शताब्दियों से चला आ रहा था, वृन्दावन के उपर्युक्त गोस्वामित्रय और उनके सहृदय अनुयायियों के द्वारा दूर किया गया। उपरोक्त दूतकाव्यों मे जो श्लोक समूह दिए गए हैं, वे पद-पद पर कालिदास की काव्यकला के प्रकर्ष का स्मरण दिलाते हैं। कालिदास की तरह

इन लोगों की रचनाओं में भी माधुर्य, और प्रसाद गुणों एवं वैदर्भी रीति का पूर्ण परिपाक लक्षित होता है। सुन्दर, सरल एवं स्वाभाविक उपमाओं की उद्भावना में भी ये लोग कालिदास की ही शैली का अनुसरण करते हैं। इनकी शैली में न तो कहीं दुरूहता है और न शिथिलता। शिखरिणी और मन्दाक्रान्ता जैसे कालिदास के प्रिय छन्दों का प्रयोग भी ये लोग समान सुकरता और संचलता से करते हैं। तात्पर्य यह कि इन भक्त कवियों के संस्कृत-काव्य की भाषा सर्वत्र सरल, सरस, उदात्त, ओजस्वी, मनोज्ञ, एवं व्यंजनापूर्ण है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें भावनाओं को मूर्त्त रूप देने की अद्भुत शक्ति है, और वह मार्मिक अंतर्वृत्तियों की अनुरूप व्यंजना के लिए जिस स्वाभाविक लाक्षणिकता का आश्रय लेती है, वह आधुनिक रोमांटिक कवियों की भाषा की चित्रोपमता से स्पर्द्धा करती है। आधुनिक काव्य-शैली के अनेक गुण भी इन कवियों की रचनाओं में स्थान-स्थान पर मिलते हैं।

चमत्कार का प्रयोग उल्लिखित दूतकाव्यों के प्रणेता इन भावुक भक्त कवियों ने भी, अपनी रचनाओं में किया है पर इन कवियों का चमत्कार-प्रयोग किसी न किसी भाव की अनुभूति को तीव्र करने लिए ही किया गया है, केवल वैचित्र्य की सृष्टि उसका लक्ष्य नहीं है। भावानुभूति को तीव्र करने के लिए इन कवियों ने कहीं कहीं मानवीकरण का बड़ा सफल प्रयोग किया है। कृष्णदेव सार्वभौम के इस 'पदाङ्कदूत' का जो प्रथम पद्य है उसमें बताया गया है कि विरहविधुरा कोई इन्दीवराक्षी अर्थात् श्री राधादेवी भ्रान्तिरूपी दूती प्रवंचना द्वारा यमुना के मंजु कुंज को ले जाई जाती हैं। उस कुंज में उन्हें व्रजपतिसुत अर्थात् श्रीकृष्ण को न पाकर मरण कष्ट हुआ

संभवत: वे दशम दशा को प्राप्त हो जाती, पर प्राणप्रियतमा सखी मूर्च्छा ने उनकी रक्षा कर ली। यह मूर्च्छा भङ्ग होने पर ही उनकी दृष्टि उस कुंज भूमि में अंकित श्रीकृष्ण के ध्वज, कुलिश, अंकुश, कंजयुक्त चरण-चिह्न पर पड़ी, और उसे ही उन्होंने अधिरूढ़ महाभाव की दशा में विरह-संदेशवाहक के कार्य में नियुक्त किया—

अप्राप्यैवं व्रजयतिसुतं तत्र कालं कियन्तं
मूर्च्छा प्राणप्रियतमसखी सङ्गता सङ्गमय्य।
तस्योरान्ते कुलिशकमलस्यन्दनाङ्कादियुक्तं
पद्माकारं मुरहरपदश्चारुचिन्हं ददर्श।

जिस समय राधादेवी ने उस चरण-चिन्ह को देखा, उस समय, आकाशमंडल में नवीन मेघ घिर कर बार २ मन्द्र ध्वनि से गर्जन कर रहे थे, जिसे सुनकर उनकी विरह-व्यथा उद्दीप्त हो उठी, और वे विक्षिप्त सी होकर उस प्रज्ञाहीन, वचन रहित, श्रोत्रहीन पदाङ्क से पुनः पुनः दूतकार्य स्वीकार कर लेने का आग्रह करने लगीं—

तस्मिन्नुद्यन्नवजलधरध्वानमाकर्ण्य भूयः
कन्दर्पेण व्यथितहृदयोन्मत्ततुल्या ययाचे।
प्रज्ञाहीनं वचनरहितं निश्चलं श्रोत्रहीनं
दौत्यं कर्त्तुं मुरहरपदो लक्षणं पंकजाक्षी।

कालिदास का निर्वाचित यक्ष जिस प्रकार आकाश में आषाढ़ के प्रथमदिवस के आश्लिष्टसानु मेघ को देखकर व्याकुल होकर चेतन-अचेतन का विवेक खोकर उसे दूतकार्य में नियुक्त करने के लिए उसकी अनेक प्रकार से प्रशंसा करते हैं, उसी तरह 'पदाङ्क दूत' की विरहिणी भी मुरहर के चरण चिन्ह की अभ्यर्थना कर उसे दूत-कार्य में नियुक्त करती है—

रम्यं यावन्मुरहपदं शोभते तावदेव
त्वय्यप्यास्ते कुलिशकमलस्यन्दनाङ्कादि युक्तम्।
गोपीदौत्यप्रकटनभिया सन्निधौ चक्रपाणेः
याने धीर प्रमुखमुखरो नूपुरो नो गृहीतः ॥

अर्थात् यद्यपि तुमको यह आशंका पहले से ही थी कि ये विरहोन्मत्ता गोपियाँ मुझे दूत बनाकर कृष्ण के पास भेजने का आग्रह करेंगी इसीलिए तुमने अपनी मूकता को प्रमाणित करने के लिए सहज मुखर नूपुरों को धारण नहीं किया है। फिर भी श्री हरि के चरणों की भाँति तुम में कुलिश, कमल, स्यंदन आदि के जो चिन्ह हैं, वे तुम्हारी सर्वत्र गमनक्षमता को सूचित करते हैं। फिर भी यदि तुम चलने में अपनी असमर्थता का प्रदर्शन करना चाहो, तो हमारे हृदय के रूप में तुम्हारे लिए अत्यन्त वेगगामी स्यंदन प्रस्तुत है जिसमें उत्कंठारूप घोड़े जुते हुए हैं। इस पर आरूढ़ होकर तुम सजल मेघ की छाया से सूर्य तेज का निवारण करते हुए जाना। प्रचण्ड किरणों वाला सूर्य भी तुम्हारे ऊपर अपनी किरणों की वर्षा नहीं करेगा, क्योंकि तुम्हारे भीतर कमल स्थित है। अतएव कमल के सखा सूर्य से तुमको खेद या क्लेश होना सम्भव नहीं—

आरुह्यास्मत् हृदयमथवा गच्छ तुङ्गैस्तुरंगै—
सौरंतेजो सजलजलदच्छायया वारणीयम।
वृष्टिं नैव त्वदुपरि करिष्यत्ययं चंडरश्मिः
खेदाशङ्की सरसिजसखस्त्वद्गताम्भोरुहस्य ॥

ऐसी हृदयावर्जक शैली में इस काव्य में दूतकाव्य-परंपरा का सफल निर्वाह, अत्यन्त छोटे चित्रपट पर ब्रजभूमि के प्राकृतिक वैभव का चित्रण, विरह की विभिन्न मनोदशाओं की मार्मिक विश्लेषण, भक्ति की महाभाव आदि परम चरम

स्थितियों का विवेचन और सर्वोपरि भगवच्चरणारविंद के माहात्म्य का निरूपण एक साथ संपन्न हुआ है।

इस काव्य के प्रणेता सार्वभौम श्रील श्रीकृष्णचन्द्र तर्कालङ्कार, महान् रसतत्त्वज्ञ श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती के शिष्य थे। गौड़ीय संप्रदाय में चक्रवर्ती जी वाग्देवतावतार रूप गोस्वामी जी के अवतार माने जाते हैं, इसी से इनका महत्व सिद्ध है। सार्वभौम कृष्णदेवजी ने विश्वनाथ चक्रवर्ती के महाकाव्य 'कृष्णभावनामृत' की सुन्दर टीका लिखी है। रूप गोस्वामीजी विरचित 'विदग्ध-माधव' नाटक की भी इन्होंने टीका की है। कवि और साहित्य-शास्त्र के आचार्य होने के अतिरिक्त ये उच्चकोटि के नैयायिक और दार्शनिक भी थे। इन्होंने बलदेव विद्याभूषण विरचित 'प्रमेयरत्नावली' की 'कान्तिमाला' नामक विद्वत्तापूर्ण टीका लिखी है। इनके समय के विषय में इतना ज्ञात है कि १६२८ शकाब्द में जब बलदेव विद्याभूषण ने जयपुर जाकर ब्रह्मसूत्रों पर गोविंदभाष्य लिखा था, तब सार्वभौमजी भी उनके सहायक के रूप में साथ में थे। गौड़ीय संप्रदाय में ये 'वेदान्तवागीश' और सार्वभौम पंडित कहे जाते थे। 'पदाङ्कदूत' में इनकी विद्वत्ता और रसज्ञता दोनों का मणिकांचन योग घटित हुआ है।

× × ×

उपर्युक्त दूतकाव्यों की संभवतः इसी प्रकार की प्रेरणा से मनोदूत की रचना हुई, जिसमें लौकिक शृङ्गार प्रधान दूतकाव्य-परंपरा को शान्तरस की पुष्टि में उपयोग में लाया गया।

परम विद्वान् एवं वीतराग कुसुमसरोवर के वैष्णववर बाबा श्रीकृष्णदासजी ने प्रथम बार 'पदांकदूत' का हिंदी अनुवाद प्रस्तुत कर हिंदी-जगत् को आभारी बनाया है। बाबाजी ने अन्य अनेक रूपों में भी हिंदी की महत्वपूर्ण सेवा की है।

विज्ञापन और प्रचार से दूर, सर्वथा प्रसिद्धि पराङ्मुख रहकर, उन्होंने चैतन्य संप्रदाय के हिंदी के शताधिक कवियों को विस्मृति के गर्भ से उबारा है, और अपने ही व्यय से उनमें से कुछ रचनाओं को प्रकाशित भी कर दिया है। इन रचनाओं के वैज्ञानिक शोध और संपादन का कार्य भी हमारे विभाग ने आरंभ कर दिया है। इस काम के पूरे हो जाने पर हिंदी-साहित्य के इतिहास में एक नये अध्याय की वृद्धि होगी। उक्त बाबाजी पन्द्रह वर्ष की अल्पायु में ही वृंदावन आगये थे। तब से वे निरंतर ब्रजभूमि में ही भक्ति-साधना कर रहे हैं। उनकी साधना का एक प्रमुख साधन है साहित्य-सेवा। वे उड़िया, संस्कृत, बँगला और हिंदी के प्रकाण्ड पंडित और रसमार्ग के विशेषज्ञ हैं। मैंने देखा है, वे प्रतिदिन कम से कम आठ-दस घंटे लिखने का काम अवश्य करते हैं। उनकी हिंदी में बँगलापन रहता है, जो सर्वथा स्वाभाविक है। इस विशाल देश की राष्ट्र-भाषा हिंदी की प्रादेशिक शैलियों का विकास तो अवश्यंभावी ही है। जिन अहिंदी भाषा भाषी विद्वानों ने आधुनिक काल में हिंदी की सेवा कर उसे समृद्ध बनाया है, उनमें बाबा श्रीकृष्ण-दासजी का स्थान सदैव ऊँचा और आदरणीय रहेगा। यह संस्करण शीघ्रता में प्रकाशित हो गया। अगले संस्करण में हम प्रत्येक श्लोक का पद्यानुवाद भी प्रस्तुत करेंगे। आशा है, सहृदय इस कृति का उचित आदर करेंगे।

कुंवर चन्द्रप्रकाशसिंह
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
म० स० विश्वविद्यालय, बड़ौदा।

वसंत पंचमी,
सं० २०१६

—·०·—

❀ ओं नमो वासुदेवाय ❀

* पदाङ्कदूतम् *

गोपीभर्त्तुर्व्विरहविधुरा काचिदिन्दीवराक्षी
उन्मत्तेव स्खलितकबरी निश्वसन्ती विशालम् ।
अत्रैवास्ते मुररिपुरिति भ्रान्तिदूतीसहाया
त्यक्त्वा गेहं झटिति यमुना-मञ्जुकुञ्जं जगाम ॥१

नत्वा कृष्णपदाम्भोजं राधामोहनशर्म्मणा ।
पदाङ्कदूतविवृत्तिः क्रियते परमादरात् ॥

श्रीकृष्णे मथुरां गतवति तद्विरहोन्मथितचित्ता काचित् प्रसिद्धा गोपी राधिका भर्त्तुर्विरहेण जातविच्छेदेन विधुरा दुःखिता सती उन्मत्ता इव गेहं त्यक्त्वा झटिति शीघ्रं यमुनामञ्जुकुञ्जं जगाम । सा कीदृशी इन्दीवराक्षी, पुनः कीदृशी स्खलितकबरी गलत्कुन्तला, पुनः कीदृशी विशालं यथा स्यात्तथा निश्वसन्ती विपुलनिश्वासक्षेपणशीला, अतएव स्खलितकबरीत्यादिविशेषणं उन्मत्तव्यञ्जकम् । अत्रैवास्ते मुररिपुरिति भ्रान्तिदूतीसहाया इत्यनेन "सर्व्वदा सखिभिः परिवृता कुलस्त्री सहाय-मन्तरेण कदापि कुत्र न गच्छति नावतिष्ठते" इत्यापत्तिर्निरस्ता ॥१॥

गोपीपति नन्दनन्दन श्रीकृष्ण के बिरह से अत्यन्त पीड़िता कोई इन्दीबरनयना अर्थात् महाभाववती वृषभानुनन्दिनी श्री राधिका उन्मत्ता होकर अपना गृह छोड़ शीघ्र ही यमुना के मनोहर कुञ्जकुटीर पर गई । गमन के समय अतिशय आवेग के कारण उनका केश-विन्यास बिखर गया तथा लम्बे लम्बे श्वास चलने लगे । "उस मनोहर कुञ्ज मन्दिर में मुररिपु, प्रियतम श्री

हरि विराजमान हैं' ऐसा उन का भ्रम हो रहा था वह भ्रम मानो गमन काल में सहाय कारिणी दूती बनकर उन्हें ले जाती थी, नहीं तो अत्यन्त विवशता के कारण उनका वहाँ गमन असम्भव था ॥ १ ॥

अप्राप्यैव व्रजपतिसुतं तत्र कालं कियन्तं
मूर्च्छा प्राणप्रियतमसखीं सङ्गता सङ्गमय्य ।
तस्योपान्ते कुलिश-कमल-स्यन्दनाङ्कादियुक्तं
पद्माकारं मुरहरपदश्चारुचिन्हं ददर्श ॥२॥

अप्राप्यैवमिति–व्रजपतिसुतं श्रीकृष्णं अप्राप्य एव यथा "अत्रैव मुररिपुरास्ते इति भ्रान्तिदूती" सर्व्वसहायरूपा तया मूर्च्छास्वरूपा प्राणप्रियतमसखीसङ्गता सती कियन्तं कालं तत्र कुञ्जे सङ्गमय्य, अव-स्थीय तस्योपान्ते कुञ्जस्य समीपे कुलिश-कमल-स्यन्दनाङ्कादियुक्तं वज्रचक्रादिविशिष्टं पद्माकारं पद्मसदृशं मुरहरपदश्चारुमनोज्ञचिन्हं ददर्श । एवमित्यनेन कुलस्त्री सहायमन्तरेण कदापि कुत्र नावतिष्ठते इत्यापत्तिर्निरस्ता ॥२॥

वहाँ आपने व्रजराजनन्दन को न पाकर कुछ समय भ्रान्ति उत्थ मूर्च्छारूप प्राणप्रियतमा सखी का संग लाभ किया अर्थात् आप मूर्च्छिता होकर कुछ काल पड़ी रहीं। यहाँ मूर्च्छा को सखी रूप से कहने का तात्पर्य्य यह है कि मूर्च्छाकाल में विरहदुःख का अनुभव नहीं होता है। उस समय इन्द्रियों की वृत्तियाँ निश्चेष्ट हो जाती हैं। अतः यहाँ मूर्च्छा मानो सहायकारिणी सखीरूप बन गई। आप की चेतना हुई। उस समय आपने उस कुञ्ज की सीमा प्रान्त में वज्र-कमल-चक्रादि चिन्हों से युक्त, पद्माकार, श्रीहरि के मनोहर चरण चिन्ह को देखा ८

तस्मिन्नुद्यन्नवजलधरध्वानमाकर्ण्य भूयः
कन्दर्पेण व्यथितहृदयोन्मत्ततुल्या ययाचे ।
प्रज्ञाहीनं वचनरहितं निश्चलं श्रोत्रहीनं
दौत्यं कर्त्तुं मुरहरपदो लक्षणं पङ्कजाक्षी ॥३

तस्मिन्नुद्यन्निति—तस्मिन् कुञ्जसमीपे तस्मिन् समये वा नवजलधर-ध्वानमाकर्ण्य नवीनमेघनिनाद श्रुत्वा भूयः पुनरपि कन्दर्पेण व्यथित-हृदया पंकजाक्षी अर्थात् राधिका पुनरुन्मत्ततुल्या सती मुरहरपदो लक्षणं चिन्हं दौत्यं दूतकर्म्म कर्त्तुं ययाचे याचितवतीत्यर्थः। चिन्हं कीदृशं प्रज्ञाहीनं बुद्धिरहितं, पुनः कीदृशं वचनरहितं, पुनः कीदृशं निश्चलं चलरहितं, पुनः कीदृशं श्रोत्रहीनं, पुनेरुन्मदत्वं व्यक्तीकृतम् ॥३॥

उस समय उस कुञ्ज में आप उदय शील नवीन मेघ का शब्द अनुभव कर बार बार कामपीड़ा से व्यथित हृदया हो गई । उस समय उन्मत्ता की भाँति वह उसे प्रार्थना करने लगी । अहो ! प्रेम की चेष्टा परम अद्भुत होती है क्योंकि आज कमल-नयना राधिका बुद्धि रहित अर्थात् जड़ रूप, बोलने में अशक्त, चलन रहित, कर्ण हीन अर्थात् सुनने में असमर्थ चरण चिन्ह को दूत कार्य्य में नियुक्त कर रही हैं। इससे उनकी स्पष्ट ही अधिरूढ़ महाभाव की विचित्र उन्मादादि दशाऐं व्यक्त हो रही हैं ॥३॥

रम्यं यावन्मुरहरपदे शोभते तावदेव
त्वय्यध्यास्ते कुलिशकमलस्यन्दनाङ्कादि युक्तम् ।
गोपीदौत्यप्रकटनभिया सन्निधौ चक्रपाणेः
याने धीर प्रमुखमुखरो नूपुरो नो गृहीतः ॥४

याचनप्रकारमाह रम्यमिति, अथवा कथं दूतत्वेनाहं परिकल्पित इति आह रम्यमिति। हे धीर! यावत् रम्यं मनोज्ञं कुलिश-कमल-स्यन्दनाङ्कादि मुरहरपदे शोभते त्वय्यपि तावदेव समस्तमास्ते किन्तु चक्रपाणेः श्रीकृष्णस्य सन्निधौ याते गमने गोपीदौत्यप्रकटनभिया गोपीनां चूतकर्म्म करणे अयं प्रतिबन्धक इति भयेन प्रमुखमुखरो नूपुरो नो गृहीतः परित्यक्तः अर्थात् त्वया प्रकृष्टमुखरात् मुखरो वा वावदूक इति यावत् ॥४॥

युक्तं चैतत् त्वयि मधुपुरीं प्रस्थिते पुण्यशीलाः
कीलालोत्थैः सुरभिकुसुमै रर्च्चयन्तोऽपि भक्त्या।
पश्यन्तस्त्वां नयनसुभगं साश्रुधाराक्षियुग्मं
धास्यंत्युच्चैः पुलकिततनुं प्रेमधारामुदाराम् ॥५

युष्मत्प्रेरिते मयि तत्र गते दूतत्वेन हतादरतया केनाप्यहं नादरणीयस्तदाशंक्य निराचष्टे युक्तञ्चेतदिति। हेतुगर्भवाक्यमेतत्। यत्र त्वयि मधुपुरीं प्रस्थिते सति पुण्यशीलाः पुण्यवन्तो जनाः नयनसुभगं नयनरुचिजनकं नयनस्य साफल्यं वा यस्मात् तादृशं त्वां पश्यन्तः कीलालोत्थैः सुरभिकुसुमैर्भक्त्याऽर्च्चयन्तः। अपि निश्चितं साश्रुधाराक्षियुग्मं तदैवानन्दाश्रुयुक्तमक्षियुग्मं यथा स्यात्तथा उदारां श्रेष्ठां पुलकिततनुं प्रेमधारां रोमाञ्चितशरीरं प्रेमसमूहं उच्चैर्यथा स्यात्तथा धास्यन्ति यास्यन्ति। अतएव युक्तमेतदित्युन्नेयः। न तवाति दुष्कृतं कर्म्म। अथवा पुलकिततनुं क्रियाविशेषणम् ॥५॥

श्री राधिका कहने लगी कि हे धीर! मैंने जान लिया है, श्रीहरि के चरणों की भाँति तुम में वज्र-कमल-चक्रादि चिन्ह मौजूद हैं अतः तुम निर्विघ्नता पूर्वक मधुपुरी के लिये गमन कर सकते हो। मार्ग में तुम्हारे लिये कोई भय नहीं रहेगा। "गोपियाँ चक्रधर श्रीहरि के निकट दौत्य कार्य्य में हमें भेज सकती है'

इस भय के कारण तुमने बोलने में मुखर नूपुर का धारण नहीं किया है। यह तुम्हें उचित है, तुमारी इस प्रकार वृत्ति से हम सब का बड़ा भारी आश्वासन हो रहा है। हे पदांक ! तुम शीघ्र मथुरा के लिये जाओ। तुम्हारे गमन करने पर पुण्यशील व्यक्ति भक्ति के साथ सुगन्धित कुसुमों से तुम्हारी अर्चना करेंगे तथा आनन्दाश्रु परिवेष्टित नयनों से नयन साफल्य कारी तुम्हें देखेंगे साथ ही साथ अत्यन्त पुलकायमान होकर प्रेम धारा का धारण करेंगे ॥४-५॥

चेतः प्रस्थापितमणुतया दौत्यकर्म्मोपयुक्तं
तत्रैवास्ते मुरहरपदस्पर्शमासाद्य मुग्धम् ।
आकांक्षेयं तनुगुरुतया नैव गन्तुं समर्था
कोऽन्यो गच्छेद्बद मधुपुरीं गोपिकानां हिताय ॥६

चेतः प्रस्थापितमिति—एतत्कर्म्मोपयुक्तमन्यं कथं मां प्रेरयेरित्याशंक्याह चेत इति। अणुतया सूक्ष्मतया अर्थात्तत्र प्रस्थापितं चेतः तत्रैव मुरहरपदस्पर्शमासाद्य मुग्धं सदास्ते। आकांक्षापि तनुगुरुतया गुरुशरीरतया न गन्तुं समर्था, तदा गोपीनां हिताय गोपस्त्रीणां प्राणरक्षायै त्वां बिना अन्यः को गच्छेदिति वा ॥६॥

यदि कहो कि "इस कार्य्य में मैं असमर्थ हूँ आप अन्य किसी को भेजिये" तब हे पदांक ! सुनो, इस दौत्य कार्य्य में सूक्ष्मरूप चित्त को भेजना उचित था, परन्तु वह चित्त श्रीहरि के पद स्पर्श पाकर मोहित हो मथुरा में उनके पास पड़ा है। इस शरीर को भेजने के लिये आकांक्षा तो रहती है परन्तु वह पीड़ से इस प्रकार भार को प्राप्त हो गया है कि-किसी भी प्रकार नहीं जा सकता है। हे पदांक ! कहो गोपियों के हित के लिये तुम्हारे बिना अन्य कौन मधुपुरी जा सकता है ? ॥६॥

आगन्तव्यं झटिति मथुरामण्डलाद्गोपकान्ते !
शान्तेति त्वं भव मधुरिपुः प्रस्थितः प्रोच्य चेदम् ।
वाक्यं तच्च श्रवणमभवत्तेन मेने क्रमाङ्क !
प्रायः सत्यं मतमिदमहो कारणं कार्य्यमेव ॥७

ननु श्रीकृष्णः यात्राकाले आयास्ये इत्युक्तं किमर्थं दूतप्रेरणं स्वयमेवायास्यतीत्यत आगन्तव्यमिति–'हे गोपकान्ते!मथुरामण्डलात् झटिति शीघ्रं आगन्तव्यं इति हेतुना त्वं शान्ता भव'' इदं प्रोच्य मधुरिपुः श्रीकृष्णः प्रस्थितः प्रस्थानं कृतवान् । हे क्रमाङ्क ! तस्मात् तद्वाक्यं श्रवणमभवत् कर्णशष्कुल्यवच्छिन्नाभावरूपगगनमभवत्, गगनत्वेनोत्कीर्त्तनं शून्यज्ञापनार्थं, एतेन तत्सर्वं मिथ्यैवेति व्यक्तीकृतम् । अत्र यद्यपि वाक्यत्वे गगनत्वविरहिततया वाक्यस्य गगनस्वरूपत्वासम्भवस्तथापि वाक्यतादृशगगनयोः समनियततया गगनस्वरूपत्वे सम्भव इत्याशयः । तेन हेतुना मेनेऽनुमानं चक्रे कार्य्यमेव कारणमिति मतं शब्दाकाशमित्यादि सांख्यवेदान्ति मतं प्रायः सत्यमित्यादि ॥७॥

हे पदांक ! वे श्रीहरि आप मथुरा जाने के समय कह गये थे कि "मैं शीघ्र ही दो-तीन दिवस के भीतर मथुरा से आपके निकट आऊँगा, आप निश्चिन्त रहिये," परन्तु उनके वह वचन केवल सुनने में आया अर्थात् कार्य्य में कुछ नहीं हुआ । श्रवण का धर्म्म शब्द है, उस शब्द रूप कार्य्य का कारण आकाश है, वह तो शून्य रूप माना गया है । शून्यरूप कारण का श्रवण कार्य्य शून्यरूप है । तात्पर्य्य–श्रीहरि के वह वचन हमारे कर्णाकाश में आकर उस आकाश धर्म्म की परिणति को प्राप्त हो गया अर्थात् असत्य रूप हो गया । "कार्य्य ही कारण है" यह सांख्यवेदान्तियों का मत सत्य हो गया है ॥७॥

तूर्णं तस्यां गमनमुचितं तेन मे तद्वियोग-
व्याधेः शान्तिस्तव च भविता तत्पुरीस्पर्शपुण्यम् ।
वृन्दारण्याद्भवतु सुकृतं भूरि तेनैव किं स्यात्
नाकांक्षा किं भवति विपुलश्रीमतोऽर्थान्तरेषु ॥८

मथुरायां गमने भवतः पुण्यलाभो भविष्यति प्रसंगतो मादृशामु-पकारोऽपि, तदवश्यं गमनमुचितमित्याह तूर्णं तस्यां गमनमिति । इदं सहेतुकं वाक्यं यतः श्रीकृष्णसन्दर्शनव्याकुलानामस्माकं वेद्यमान-विरहेण संस्थापितं कार्य्यमेव कारणमिति मतं नाभिमतं अतस्तूर्णं शीघ्रं तस्यां मथुरायां गमनं अर्थात्तव उचितं युक्तमेवेति । मम तत्र गमने तव किमित्याह व्याधिरित्यादि, तेन हेतुना मे मम वियोगव्याधिः वियोगात् विच्छेदात् जातो विरहस्वरूपो ज्वरस्तस्य शान्तिर्भविता उपशमो भविष्यतीत्यर्थः । व्याधिपाठ उद्देश्यविधेयभावो बोध्य । ननु तव विरहज्वरो वर्त्तते मे मम किमित्याह तव चेति-तवापि तत्पुरी-स्पर्शपूण्यं तत्पुरीस्पर्शमात्रेण पूण्यं भवितेति शेषः । "अयोध्या-मथुरा-माया-काशी-काञ्ची-अवन्तिका ।" इत्यादि ग्रहणात् । वृन्दाबनवासिनो मे अन्यतीर्थगमनजपूण्यं न किमित्याह-वृन्दारण्यादिति वृन्दारण्यात् वृन्दाबनजातं सुकृतं मे भवतु तदापेक्षया भूरि अतिरिक्तेन तत्पुरीस्पर्श-पूण्येन किं स्यादित्याशङ्क्य निराचष्टे नाकांक्षेति-किं विपुलश्रीमतो महैश्वर्य्यवतोऽर्थान्तरेषु आकांक्षा न भवति अपि तु भवत्येव ॥८॥

अतः शीघ्र ही तुम्हारा जाना उचित है । उससे हमारी यह विरह व्याधि शान्त हो जाएगी । तुम्हें भी उस पवित्र पुरी का स्पर्श लाभ होगा । शास्त्र में सप्तपुरी में से मथुरापुरी के अधिक पुण्य माहात्म्य वर्णित है । यदि कहो कि हम वृन्दावन निवासी हैं.हमारे वहाँ जाने पर अधिक तो क्या पुण्य लाभ हो सकता है तो सुनो–महान् लक्ष्मीवान् की भी क्या अर्थान्तर में इच्छा नहीं

रहती है ? अर्थात् लक्ष्मीवंत जन को भी नाना वस्तु में अभि-लाष रहता है ॥८॥

अक्रूरस्य व्रजकुलवधूप्राणपानोद्यतस्य
प्रीतिर्भूयो भवतु भवतो दर्शनात्तेन किम्वा ।
कार्य्यसिद्धि र्भवति यदहो मादृशां दुःखहेतु-
र्न्नैवोन्नत्यं सकलभुवनप्रार्थनीयं रिपूणाम् ॥९

ननु मद्गमने भवतीनां रिपोरक्रूरस्य प्रीतिर्भविष्यतीत्याह अक्रूरस्येति । अथवा अक्रूरस्य विपुलं हर्षजनकव्यापारो दुःखहेतुरित्याशङ्क्य निराचष्टे अक्रूरस्येति । अहो सखे तव दर्शनात् व्रजकुलवधूप्राणपानोद्यतस्य गोपाङ्गणानां मरणाकुलव्यापारप्रवर्त्तमानस्य अक्रूरस्य प्रीतिर्हर्षः, भूयः पुनरपि भवतु तेन मादृशां किं स्यात् यद् यस्मात् रिपूणां सकलभुवनप्रार्थनीयं त्रिभुवनाकांक्षाविषयीभूतं औन्नत्यं नास्माकं दुःखहेतुर्भवति केवलं कार्य्यसिद्धिरेवेति ॥९॥

वहाँ व्रजरमणियों का प्राण पान करने में उद्यत अक्रूरजी से आपका मिलन होगा । उसके साथ तुम्हारी प्रीति हो सकती है । परन्तु देख उसका मिलन से हमारी कुछ स्वार्थसिद्धि नहीं होगी । हम सबके दुःख का कारण तो अक्रूर है । वह इस विषय में तो क्या सहायता कर सकता है । क्या शत्रुओं के निकट कुछ माँगा जा सकता है ? ॥९॥

सन्त्येवास्मत्कलुषकरिणः कोटिशो वारणीया-
स्तेऽप्यस्माभिः स्मृतिकरवरेणाङ्कुशन्ते गृहीत्वा ।
स्वच्छन्देन व्रज मधुपुरीं को भवेद्वा विरोधी
गोपीभर्त्तुर्विरहजलधिं गोपकन्यास्तरन्तु ॥१०

ननु भवतीनां पापहस्तिनो गमनावरोधेन वर्तन्ते तत्कथं गन्तव्य-मिति स्वयमाशङ्क्य निराचष्टे सन्त्येवास्मदिति । अस्मत् कलुषकरिण: अस्माकं पापरूपकरिण: कोटिश: कोटिकोटि सन्त्येव तेऽपि करिण:, अस्माभिस्ते तव स्मृतिकरवरेण स्मरणरूप—करवरेण करश्रेष्ठेन त्वयि स्थितं अङ्कुशं गृहीत्वा वारणीया:। अर्थात् त्वयि चिन्हे अंकुशस्य स्मरणादेव पापरूपहस्तिन: स्वयमेव नश्यन्तीति भाव: । श्रीकृष्णविरह-पीडितायास्माकं दु:खनाशाय त्वं स्वच्छन्देन यथेष्टाचरणेन सुखेन वा मधुपुरीं व्रज, अर्थात् तव गमने को वा विरोधी भवेत् न कोऽपि इत्यर्थ:। गोपीभर्तु: राधानाथस्य विरहविच्छेदरूपं समुद्रं गोपकन्यास्तरन्तु बहुवचनेनानेकानुरोधेन अवश्यमेव तव गमनं युक्तमिति व्यक्तम् ॥१०॥

हम सब के कलुष रूप अनेक हाथी मौजूद हैं। अर्थात् हम सब की विपत्तियों की कोई सीमा नहीं है। परन्तु हे पद्मांक! हम सब ने स्मरण रूप हाथ से तुम में मौजूद अंकुश के सहारे से उन कलुष कोटि हस्तिओं का दमन कर लिया है। अत: तुम स्वच्छन्दता से मथुरा के लिये जाओ, तुम्हारा विरोध कोई नहीं कर सकता है। अर्थात् तुम में अंकुश मौजूद है। वह सब का दमन कर लेगा। तुम शीघ्र ही मथुरापुरी के लिये जाओ, गोप-किशोरियों को गोपीपति श्रीहरि के विरहसागर से पार करो। उससे तुम्हारी महान् कीर्ति तथा गोपरमणियों का महान् उपकार होगा ॥१०॥

आस्ते नूनं यदुषु मथुरामण्डले चक्रपाणि:
कूजद्भृङ्गै रमलकमलैराकुले गोकुले वा।
तस्माद्गच्छे रतिलघुपुरीं ताञ्च जन्मावनीवद्
बालक्रीडां रचयति मुहुर्यत्र तत्रानुराग: ॥११

आस्ते नूनमिति । मया कुत्र गन्तव्यमित्याशङ्क्याह—आस्ते नूनमिति । चक्रपाणिः श्रीकृष्णः यदुषु मध्येषु मथुरामण्डले कूजद्भृङ्गैरमलकमलैराकुले गोकुले वा नूनं निश्चितं आस्ते । तस्मादति लघु अतिशीघ्रं ताञ्च पुरीं गच्छेरित्यन्वयः । च शब्द एवकारार्थस्तामेव अग्रे गोकुलं वा गच्छेः । किन्तु जन्मावनीवत् जन्मभूमिवत् जन्मभूमौ यादृशानुरागः तत्रापि तादृशानुरागः, मुहुर्वारं वारं बालक्रीडां यत्र रचयति अतः तत्र तादृशानुरागः । एतेन मथुरायां यदि नो दृश्यते तदा गोकुले आगन्तव्यमिति व्यक्तम् तथाच जन्मभूमितया गोकुले वा आस्ते इत्युभयत्रैव गन्तव्यमिति भावः ॥११॥

चक्रधर श्रीहरि मथुरा नगरी में यादवों के साथ अवश्य विराजमान मिलेंगे अथवा भ्रमरावलि से परिवेष्टित अमल कमलों से युक्त गोकुल में होंगे, अतएव तुम अत्यन्त सावधानी से पहले उस पुरी के लिये जाओ, मथुरापुरी तो उनकी जन्मभूमि है । गोकुल में भी आपने नाना बालक्रीडा की थीं । उससे दोनों स्थल में उनका अत्यन्त अनुराग रहता है । यदि मथुरा में वे तुम्हें नहीं मिलेंगे तो वहाँ से गोकुल में जाना । वहाँ वे तुमको मिल जावेंगे ॥११॥

आस्तां मध्ये तरणितनया भीषणा भूरिनक्रै
रावर्त्ताद्यैर्नयनभयदैस्तान्तरिष्यस्यवश्यम् ।
संसाराब्धिं तरति सहसा यत् पदं चिन्तयित्वा
तस्यासाध्यं भवति किमहो पारयानं तटिन्याः ॥१२

आस्तां तुरङ्गतरङ्गावर्त्ताद्यैर्भीषणा यमुना पथि कथं पारमासादयामीत्याशङ्क्याह । आस्तामिति—आवर्त्ताद्यैर्नयनभयदैर्नयनभयजनकैर्भूरिनक्रैर्भीषणा तरणितनया यमुना मध्ये आस्ते तामवश्यं

तरिष्यसि' इत्यन्वयः । भावार्थमाह यदिति—यं क्षणमपि चिन्तयित्वा संसाराब्धिं तरति संसाररूपं समुद्रं सहसा तरति अर्थात् प्राणिमात्रं, तस्या तटिन्याः पारयानं अहो आश्चर्य्यं किमसाध्यं भवति ? अपितु न भवतीत्यर्थः अहो अङ्क यत्स्मरणमात्रादेव दर्शनागोचरपारस्य संसार-समुद्रस्य अनायासेन अन्य पारं गच्छन्ति एवंभूतस्य तव नदीपारे संशयोऽसिद्ध एवेति भावः ॥१२॥

अच्छा, "गमन के समय मार्ग में भयानक अनेक कुम्हीर-मगरों से युक्त, गंभीर जल के आवर्तों से भयङ्कर जमुना पड़ेगी, किस प्रकार मैं उसको पार हूँगा" यदि इस प्रकार शंका करते हो तो सुनो, तुम अवश्य उस जमुना का पार हो जाओगे, क्यों कि जिस तुम्हारा क्षण काल चिन्तन करके सब कोई महान भव सागर से पार हो जाते हैं उस एक यमुना नदी का पार हो जाना कोई असाध्य नही है । हे चिन्ह ! जिसके स्मरण से प्राणी मात्र ही दर्शन में अगोचर अपार संसार समुद्र को अनायास में पार हो जाते हैं ऐसा तुमको यमुना पार करने में शंका नही करनी चाहिये ॥१२॥

दृष्ट्वैव त्वां विदितमधुना पूर्व्ववत् पद्मनाभं
प्राप्यावश्यं विरहजलधेः पारमासादयिष्ये ।
मोदिष्ये च क्षणमपि हरेरास्यचन्द्रामृतेन
प्राप्तप्राणा सुरभिकुसमामोदिते मञ्जुकुञ्जे ॥१३

गन्तव्यमिति—मम गमने हरेरागमनं भविता न वेति संशयापन्नः सन् यदि न गच्छति इत्याशङ्क्य निराचष्टे दृष्ट्वैवेतिपूर्व्ववत् पूर्व्वकालमि पद्मनाभं प्राप्यावश्यं विरहजलधेः पारमासादयिष्ये क्षणमपि हरेरास्य चन्द्रामृतेन प्राप्तप्राणा सती सुरभिकुसुमामोदिते मञ्जुकुञ्जे दृ दृष्ट्वैवेतद्विदितं निश्चलमिति संशयच्छेदवाक्यम् ॥१३॥

अब हमने तुमको देखकर जान लिया कि पद्मनाभ पहले की भाँति यहाँ अवश्य प्राप्त होंगे तथा हम सब बिरह जलधि से पार होकर प्राण लाभ पूर्वक सुगन्धि पुष्पों से आमोदित इस मनोहर कुञ्ज में उनके मुखचन्द्र सुधा का पान कर प्रसन्न होंगी ॥१३॥

सम्पर्कात्ते तरणितनयातीरसोपानवृन्दं
राज्ञः पन्थास्तलमपि तरोराचितं पद्मरागैः ।
शोभां यास्यत्यचिरमतुलां स्वीयकार्य्यानुरोधा-
दुक्तैरेतैर्मुहुरपि सखे ! तत्र न स्थेयमेव ॥१४

सम्पर्कादिति — स्वीयकर्म्मानुरोधेन यमुनातीरसोपानवृन्दादीनां बहुतरप्रयासवाक्येन—विस्मृतः तत्रैवावतिष्ठेत तदाशङ्कय निषेधति सम्पर्कादिति । हे सखे तव सम्पर्कात् तव सम्बन्धात् यमुनातीरसोपानवृन्द, राजपन्थाः पद्मरागरचितं पद्मरागादिभि र्निबद्धा तरोर्मूलमपि अचिरं तत्क्षणादेव अतुलमाश्चर्य्यं शोभां यास्यति प्राप्स्यति । एतेषां स्वीयकर्म्मानुरोधात् मुहुर्वारं वारं अत्र तिष्ठेः इत्यादि भवदवस्थितिघटकैरेतैरुक्तैः तत्र न स्थेयं न स्थातव्यमिति । अतः स्वरूपं परित्यक्त्वा सखे इति सम्बोधनेन सखिभावतया अस्मत् प्रेरितस्य तव तत्रावस्थितिरस्मत् प्राणवियोगहेतुत्वेन निन्दा स्यादिति व्यञ्जितम् ॥१४॥

तुम्हारे सम्पर्क से यमुना तीर के समस्त सोपान (सिढ़ियाँ), समस्त राजमार्ग तथा पद्मराग मणियों से खचित वृक्षों के तल देश परम शोभा को धारण करेंगे । हे सखे ! हम तुम से बार बार यह कहती हैं कि वहाँ अपने किसी कार्य्य के वश दीर्घकाल नहीं ठहरना ॥१४॥

ये वीक्ष्यन्ते सततमधुना श्रीपतेरंघ्रिपद्म
मञ्जीराद्यैः कनककलितैर्भूषणैर्भूषितञ्च ।

तेषां च त्वं किमु न भविता लोचनप्रीतिहेतु-
र्व्यक्तैरेतैः कुलिशकमलस्यन्दनाङ्कादिचिन्हैः ॥१५

ये वीक्षन्त इति । ये जना ब्रह्मादीनामप्याराध्यं श्रीकृष्णचरणार-विन्दं निरन्तरं अवलोकयन्ति तेषां लोचनप्रीतिहेतुः किमहं स्यादित्या-शङ्कां निराचष्टे ये वीक्षन्त इति । ये जना अधुना इदानीं सततं निरन्तरं मञ्जीराद्यैर्नूपुराद्यैः कनककलितैः कनकनिर्म्मितैर्भूषणैर्भूषितं श्रीपते-रङ्घ्रिपदं बीक्षन्ते तेषां त्वं गोचरप्रीतिहेतुः नयनहर्षजनकं किं न भविता अपि तु भवितैव । अत्र कारणमपि स्पष्टयति व्यक्तैरेतैरिति एतैः श्रीकृष्णपदभूषणकमल-स्यन्दनादिचिन्हैर्व्यक्तैः व्यक्तीभूतैः कारणैरि-त्यर्थः । एतेन तव तत्त्वेनातिशयप्रीतिहेतुर्भवितेति व्यञ्जितम् ॥१५॥

बज्र, कमल, रथादि चिन्हों से तथा सुवर्ण रचित मञ्जी-रादि भूषणों से भूपित श्रीहरि के पदकमल का अवलोकन जो लोग निरन्तर कर रहे हैं क्या तुम उन सबका नयन प्रीति स्वरूप नहीं होगे ? अर्थात् उनका तुम नेत्र प्रसन्न कारी बनोगे। तात्पर्य्य-कमल-रथादि चिन्हों से भूपिन श्रीहरि के पदकमल की भाँति तुम्हें वे सब देखकर बड़े प्रसन्न होंगे ॥१५॥

यस्या सङ्गादलभत तनुं मानुषीं गौतमस्त्री
ध्यानेनैव प्रथितमहिमः श्रीपतिं नारदादिः ।
तस्माज्जाते त्वयि मधुरिपोरङ्घ्रिपद्माद्विचित्रः
किं दीनानामुपरि करुणालिङ्गितो दृष्टिपातः ॥१६

दयालोस्तव पैतृक धर्म्मं इत्याह—यस्यासङ्गादिति । अधुना केवलं युष्माकमनुरोधेन कथं मया गन्तव्यमित्याशङ्क्याह यस्य सङ्गादिति । यस्य श्रीकृष्णचरणस्य पङ्कजस्य आसङ्गात् स्पर्शनात् गौतमस्त्री अहल्या पाषाणमयी मानुषीं तनुमलभत मनुष्यदेहं प्राप्तवती । अन्यश्च यस्य

ध्यानेनैव प्रथितमहिमः सन् प्रख्यातमहिमः सन् श्रीपतिं परमेश्वरं नारदादिरलभत इत्यन्वयः। श्रीकृष्णस्य तस्मादङ्घ्रिपद्माज्जाते त्वयि मादृशां दीनानामुपरि दीनेषु करुणालिङ्गितो दृष्टिपातः परदुःख-प्रहाणेच्छया आलिङ्गितं यद्दृष्टिपातं अस्मदनुरोधेन तत्र गमनरूपं किं विचित्रं आश्चर्य्यं, एतेन यस्य सङ्गादित्यादिना जनकस्वभावं दर्शयित्वा मादृशां कर्म्मकरणेन करुणाहीने त्वयि संशयोऽजायत इति व्यञ्जितम्॥१६

जिसका संग लाभ कर गौतम ऋषि की पत्नी ने प्रस्थर से मानुष शरीर का लाभ किया तथा नारदादि मुनिगण जिसका ध्यान कर महान महिमाशाली हुए, उस मधुरिपु के चरण कमल से तुम्हारा जन्म है। क्या ऐसे तुम हम सब दीन हीन व्यक्तियों के ऊपर करुणा युक्त विचित्र दृष्टिपात नहीं करोगे। जनक के गुण जन्य में अवश्य होना चाहिये ॥१६॥

एकं चिन्हं हरिपदभवं पन्नगस्योत्तमाङ्गे
तादृक् शोभामपि खगपतेर्निर्भयत्वं चकार।
पिण्डेनान्यत्तरणिरभवद्घोरसंसारसिन्धौ
ध्यातं तादृक् त्वमपि महतां जन्म विश्वोपकृत्यै ॥१७

एकं चिन्हं—इदं सहचारदर्शनेन तत्कर्त्तृकस्वाभिमतसिद्धिहेतुवाक्यं हरिपदं भवदेकं पन्नगस्य कालीयस्य उत्तमाङ्गे शिरसि तादृक् शोभां खगपतेर्निर्भयत्वं चकार इत्यन्वयः। अपि नाम न केवलं उत्तमां शोभां खगपतेर्निर्भयत्वमपि इति सूच्यते। अन्यच्च पिण्डेन गयासुरमस्तकस्थं पिण्डे नार्पितावशिष्टं तत्तनाम्ना दत्तपिण्डैः करणकैः घोरसंसारसिन्धौ दुस्तर-भवार्णवे तरणिरभवत्। अस्माभिस्त्वं तादृगेव ध्यातं, महतां जन्म-परिग्रहः विश्वोपकृत्यै विश्वोपकाराय तदर्थाय इति। तत्र महतां जन्मे-त्यादिना युस्माकं प

कालिय नाग ने अपने सिर पर श्रीहरि के चरणोत्पन्न एक ही चिन्ह के पड़ जाने के कारण असीमशोभा को प्राप्त किया तथा वह गरुड़ जी से निर्भय हो गया। जो (चिन्ह) भयानक संसार सागर का पार कराने के लिये नौका रूप है। ऐसा तो तुम्हारा स्वरूप है। और भी सुना है कि गयासुर मस्तक में विराजमान वह चरण जिस जिस नाम से पिंड दिया जाता है उस उस व्यक्ति को घोर संसार सागर से पार कराने के लिये भी नाव रूप है। हम सब भी तुमको इसी प्रकार ध्यान करती हैं। तुम हम सबके ऊपर अवश्य करुणा करोगे। तुम्हारी भाँति महतों का जन्म विश्व उपकारार्थ होता है ॥१७॥

उत्फुल्लानामतिसुरभयः सौरभैरम्बुजाना-
मम्भोजैस्तैस्तरणिदुहितुः शीतलैः शीतलाश्च ।
अद्यावश्यं सततगतयः स्वैरमाधूतवही
वर्तिष्यन्ते भवदभिमतप्रीतये लाञ्छनाग्र ? ॥१८

तब गमने श्रमो न भविष्यतीत्याह उत्फुल्लानामिति—हे लाञ्छनाग्र चिन्हश्रेष्ठ ! अद्य सततगतयो वायवःभवदभिमतप्रीतये अवश्यं वर्त्तिष्यन्ते गमिष्यन्तीत्यन्वयः। कीदृशा अतिसुरभयः उत्फुल्लानामम्भोजानां सौरभैः सौगन्धैरत्यन्तसौगन्धयुक्ताः, पुनः कीदृशास्तरणिदुहितु-र्यमुनायाः शीतलैरम्भोजै र्जलकणाभिः शीतला शैत्याः स्वैरमाधूतवह्नीः स्वैरं यथा स्यात्तथा आ सम्यक् धूताः कम्पिता यैरित्यर्थः। एतैः शैत्यसौगन्ध्य-मान्द्यात्रिविधस्वरूपं व्यक्तम् ॥१८॥

हे चिन्ह श्रेष्ठ ! यमुना के उत्फुल्ल कमलों के सौरभ से अत्यन्त सुगन्धित तथा उसके शीतल जल कणों से शीतल निरन्तर बहने वाले वह कम्पायमान पवन तुम्हारे अभिमत प्रीति के लिये अवश्य होगा। अतः तुम स्वच्छन्दता के साथ परिक्लान्त

शून्य होकर गमन करोगे। तात्पर्य मार्ग में तुम्हें कोई दुःख नहीं होगा ॥१८॥

हातव्येयं चिरपरिचिता जन्मभूमीति बुध्या
मा खिद्यस्व त्रिभुवनजनत्राणहेतो क्रमाङ्क ।
किं न त्याज्यं भवति महतां चेत् परस्योपकारो
वाराणस्या मुनिरपि गतो दक्षिणाशामगस्त्यः ॥१९

त्यक्तव्येति । जन्मभूमिपरित्यागजातदुःखानुभवतया यदि न गच्छति इत्याशङ्क्याह त्यक्तव्येति—हे क्रमाङ्क ! त्रिभुवनजनत्राणहेतो इयं चिरपरिचिता जन्मभूमिः चिरकालपर्य्यन्तं कृतवसतिस्थानं परित्यक्तव्या इति बुद्ध्या त्वं मा खिद्य स्वखेदं मा कुरु इत्यन्यहेतुं दर्शयति किन्नेति चेत यदि परोपकारो भवति तदा महतां जनानां उपकारकारिणां कि न त्याज्यं दृष्टान्तमाह-वाराणस्या इति यथा अगस्त्यो मुनिरपि परोपकृत्यै वाराणस्या दक्षिणाशां दक्षिणदिशं विन्ध्याचलं गत इति । विन्धदमनार्थं देवप्रार्थनीयां वाराणसीं त्यक्त्वा दक्षिणस्यां दिशि प्रस्थित इति काशीखण्डे प्रसिद्धम् ॥१९॥

हे पदांक ! "यह मेरी चिर परिचित जन्मभूमि है, मैं इसे छोड़कर किस प्रकार अन्यत्र जाऊँगा इस प्रकार विचार परामर्श करके चित्त में दुःख मत करना । देख ! जन्मभूमि के त्याग से दुःख तो अवश्य होता है परन्तु त्रिभुवन जनों के त्राणार्थ तुम्हारा जन्म है। परोपकार ही महतों का भूषण स्वरूप माना जाता है। देख ! मुनिराज अगस्त्य जी परोपकारार्थ निज प्रिय वाराणसी क्षेत्र का त्याग कर विन्ध्याचल के लिये गये थे। देवतागण से प्रार्थित होकर उनका विन्ध्याचल जाना काशीखण्ड में प्रसिद्ध है ॥१९॥

कर्पूरादेः सलिमभवत् वैतरण्यम्बुतुल्यं
वाक्यागम्यं नदति कठिने कोकिलः षट्पदोऽपि ।
वृन्दारण्ये किरति गरलं दुःसहं शीतरश्मिः
नैतद्वाच्यं सकृदपि सखे सन्निधौ चक्रपाणेः ॥२०

प्रार्थयति कर्पूरादेरिति । श्रीकृष्णविरहानलेन दैन्यगतानामस्माकमेतद्वृत्तान्तं श्रुत्वा हतानुरागतया यदि नायाति इत्याशङ्क्य निषेधति कर्पूरादेरिति । इदानीमस्माकं कर्पूरादेः कर्पूरादिवासितजलमपि वैतरणीजलतुल्यमभवदिति । अन्यच्च कोकिलः, षट्पदोपि यत् कठिनं कर्कशं नदति अव्यक्तं शब्दं करोति तद्वाक्यागम्यं, तं कीदृशं तद्वक्तुमसमर्थाः । अन्यच्च वृन्दारण्ये अर्थादिदानीं शीतरश्मिरमृतक्षरणशीलचन्द्रः दुःसहं असह्यं गरलं विषं किरति क्षरति । एतेन तद्विरहेण प्राप्तभावान्तरतया बहुकालं न जीवामः । मृत्योर्प्रागवस्थायामेतादृक् भावान्तरो जायते इति ध्वनितं, किन्तु एतद्वाक्यं सकृदपि एकवारमपि केशवस्य सन्निधौ निकटे न वाच्यं न वक्तव्यमिति । एतद् यदि श्रूयते वृन्दावनवासस्य दुःखकरत्वमेवावधार्य्यं कृष्णेन तदा नागन्तव्यमितिचेत् तर्हि अस्माकं महान् अनर्थः स्यात् । अपि तु तदागमने सर्वं शान्तं स्यात् इति ध्वनिः ॥ २० ॥

इस वृन्दावन में विरहपीड़िता हम सबके लिये कर्पूरादि युक्त शीतल जल भी वैतरणी जल की भाँति दुःखरूप हो रहा है। कोकिल-भ्रमरों का शब्द भी कठिन प्रतीत हो रहा है, चन्द्रमा भी हमारे लिये दुःसह गरलाग्नि का वर्षण कर रहा है। हम इन बातों को किस से कहें, यह वाणी के द्वारा नहीं व्यक्त किया जाता है। और सुन, श्रीहरि के निकट तुम इन बातों का एक बार भी मत कहना। क्योंकि इस प्रकार दुःखमय व्रज वास सुन कर वे आने को नहीं चाहेंगे। उससे महान् अनर्थ हो

जायेगा। उनके आगमन से ही यहाँ परम शान्ति मिल सकती है यह ध्वनित हो रहा है ॥२०॥

प्रस्थानं ते कुलिशकलनान्निश्चितं पण्डिताद्यै
श्चित्तेऽस्माकं तदपि रमते याहि याहीति वाणी।
अप्रामाण्यं कथयति सदा नन्दसूनोर्व्वियोगो
व्याप्यज्ञानाद्व्रजकुलभुवां व्यापकस्यापि सिद्धौ ॥२१

प्रस्थानमिति। अनिश्चितगमने वृत्तान्तविज्ञापनं न युक्तमित्याह-प्रस्थानमिति। पण्डिताद्यैर्विज्ञवरैः कुलिशकलनात् वज्रधारणात्ते तव प्रस्थानं गमनं निश्चितं "दूरदेशगमनव्याप्य उत्पातादिशङ्कया वज्रधारणवानयम्" इति परामर्शो "इयं गमनवान् वज्रधारित्वादित्य" नुमानेनैव निश्चितं इति भावार्थः। निश्चितगमने बारं बारं वृत्तान्तं युक्तं, यतो वारम्वारमुक्तं गमनसंशयस्य हेतुतया तत संशयं प्रति तन्निश्चयस्य विरोधित्वात्तत् संशयाभावादित्याह चित्तेऽस्माकमिति, व्रजकुलभुवामस्माकं चित्ते यद् याहि याहीति रमते उच्चारणीयतया भासते तन्नन्दसूनोः श्रीकृष्णस्य वियोगो विच्छेदः व्याप्यज्ञानात् व्यापकताज्ञानस्य सिद्धावपि अप्रामाण्यं कथयति अप्रामाण्यं जनयति। एतेन अप्रामाण्यज्ञानानान्दितनिश्चयस्य प्रतिबन्धकतया तन्निश्चयस्याप्रामाण्यज्ञानस्कन्दितत्वेन तत् संशयं प्रतिबन्धकत्वाभावेन संशयोत्पादात् संशये सति बारम्बारं विज्ञापनं युक्तमिति भावार्थः। अत्र नन्दसूनोः स्वामित्वेन व्यापकत्वमिति च व्यञ्जितम्। एव च्चास्त्रधारीत्वेन गमनानुमितोऽप्रामाण्यं संशयात्माज्ञानप्रयोजकत्वं नन्दसूनोर्वियोगस्य तेन चाप्राण्यं संशयेन गमनसन्देहोदयेन मादृशां याहि याहीति प्रेरणं ज्ञानधार्म्मिकाप्रामाण्यसन्देहस्य विषयसन्देहजनकत्वादिति भावः ॥ २१ ॥

पण्डितगण तुम में कुलिश अर्थात् वज्र का चिन्ह देख कर उससे विघ्ननाश हो जाने का स्मरण कर "यह मथुरा नहीं जा

सकता है" इस प्रकार आशंका नहीं कर सकते हैं। इसलिये "तुम जाओ जाओ" इस प्रकार की वाणी हमारे चित्त से बलपूर्वक निकल रही है। हे पदांक ! देखो नन्दनन्दन का वियोग अप्रामाण्य है अर्थात् चिरकाल स्थायी नहीं है। विरह तो "वे सदा ही सर्वत्र तथा आपके चित्त में भी विराजमान हैं" इस प्रकार सूचित कर रहा है। इससे व्याप्यज्ञान से अर्थात् वे केवल हमारे हृदय में मौजूद हैं इस प्रकार ज्ञान से व्यापकज्ञान की अर्थात् वे सर्वत्र सब समय मौजूद हैं इस प्रकार ज्ञान की सिद्धि होती है। भावार्थ यह है कि ब्रजरमणियों की विरहावस्था में भी श्रीकृष्ण की स्फूर्त्ति विद्यमान रहती है। परन्तु वे सब विरह दशा में आकर उसका अनुभव नहीं रखती हैं। उनका "हृदयविहारी प्राणवल्लभ हमें त्याग कर मथुरा चले गये" इस प्रकार भान निरन्तर होता रहता है ॥२१॥

उक्तः प्रायं तरणितनयानागयोस्तत्कथाया
मास्ते को वा जगति भवतां भीतिहेतुः क्रमाङ्क ।
किञ्च स्वान्ते क्षणमपि भवत् सङ्गमे याति दूरं
भीतिर्मृत्योरपि किमशनिं लोकरीत्या दधासि ॥२२

उक्तप्रायमिति। ततः स्वरूपवर्णनयापत्या तुष्यति उक्तमिति, हे क्रमाङ्क ! भवतां भीतिहेतुर्जगति को वा आस्ते इति तरणितनयानागयोस्तत् कथायां आस्तां मध्ये इत्यादिना एकं चिन्हं हरिपदभवमित्यादिना च प्रायेणोक्तं उक्तप्रायमिति राजदन्तादिवत् पूर्वनिपातोऽभिधानात्। किञ्च अन्यच्च क्षणमपि स्वल्पकालमपि स्वान्ते चित्ते भवत् सङ्गमे भवत्संयोगे सति मृत्योर्मरणस्य भयं दूरं याति, त्वमशनिं वज्रं किं लोकरीत्या पूर्वापरदृष्ट्या दधासि धृतवानसि अकुतो भयस्य तव वज्रादिधारणं लीलामात्रं वस्तुतः तद्धारणादिकं व्यर्थत्वम् ॥ २२

हे पदांक ! तुम यमुना तथा विपत्तियों का पार हो जाओगे इसमें कोई सन्देह नहीं है। आप सब महतों का इस जगत में कोइ भय का कारण नहीं रह सकता है। हृदय में क्षण काल भी आपका संगम लाभ करने पर भयधारिओं का मृत्यु-भय भी दूर हो जाता है। इसलिये ही क्या तुमने वज्र का धारण कर रखा है ? नहीं नहीं अकुतो भय वाले तुम्हारे वज्रादि धारण लीला मात्र है ॥२२॥

येनारूढं विषधरशिरो भूरिवक्तव्यमन्यत्
किम्वाकारि स्तनगिरिवरारोहणञ्च श्रुतं तत् ।
उत्पन्नस्य प्रियतमपदात्तेन भीतिस्तवास्ते
को वा ब्रूयात इति हि सदृशं कारणेनैव कार्य्यम्॥२३

येनारूढमित्यादि । येन श्रीकृष्णेन विषधरशिरः कालीयस्य शिर आरूढं, स्तनगिरिवरारोहणञ्च अकारि, तत् त्वया श्रुतं अन्यत्तदतिरिक्तं भूरि किम्वा वक्तव्यं; तेन प्रियतमपदात् उत्पन्नस्य तव भीतिरास्ते इति को वा ब्रूयादित्यन्वयः । अस्य हेतुं दर्शयति सदृशं कारणेनैव कार्य्यं हि यस्मात् कारणसदृशं कारणस्याप्रतिबन्धकं कार्य्यमिति ॥ २३ ॥

हे पदांक ! इस विषय में तुमसे हम अधिक क्या कह सकती है। जिसने विषधर भयानक कालियनाग के सिर पर आरोहण किया है, तथा गोपीस्तन पर्वतराज में जिस का आरोहण सुनने में आता है ऐसे प्रियतम श्रीहरि के चरणों से उत्पन्न तुम्हारा भय है ऐसा कोई नहीं कह सकता है। कारण के साथ कार्य्य की अवस्य रहती है अर्थात् श्रीहरि चरणों में

कोई भय नहीं है; अतः उनसे उत्पन्न तुम्हारा भय का कारण नहीं हो सकता है ॥२३॥

ज्ञातं ज्ञातं कुलिशसदृशं चिन्हमेतन्न वज्रं
नो चेदेवं जनयति कथं लोचनप्रीतिधाराम् ।
दूरस्थञ्च ग्लपयति मनो निःस्वनो यस्य तत्स्या
न्नेत्रप्रीतिप्रदमिति वचो न श्रुतं क्वापि केन ॥२४

ज्ञातं ज्ञातमिति, वीप्सा दृढप्रत्ययार्थं एतत् कुलिशसदृशं चिन्हमेत्र न वज्रमित्यर्थः । तदेव व्यक्तं करोति नो चेदिति यदि एवं न वज्रमेव चिह्नं तदा लोचने कथं प्रीतिधारां प्रीतिसमूहं जनयति । अस्य स्वरूपं दर्शयति-दूरस्थञ्चेति यस्य वज्रस्य निश्वनो दूरस्थञ्च दूरस्थं जनमपि नमोग्लपयति तन्नेत्रप्रीतिप्रदं स्यात् इति वचः केन कुत्रापि न श्रुतमिति ॥ २४ ॥

हमने जान लिया जान लिया है कि-देखने में कुलिश (वज्र) की भांति यह चिन्ह प्रतीत हो रहा है परन्तु विचार करने पर उसमें वज्र की भाँति कठोरता नहीं है। उसमें कठोरता किस प्रकार आ सकती है ? क्योंकि वह तो दर्शन मात्र से नयनों मे प्रेम प्रवाह का धारण करा रहा है तथा दूर से मन को आकर्षित कर सरस बना रहा है । वज्रशब्द नयन-कर्णों का प्रीतिपद ऐसा किसी ने कहीं नहीं सुना है ॥२४॥

आस्ते चैवं नवजलधरो यं विलोक्य प्रमोदाः
नृत्यन्त्युच्चैर्विषधरभुजो निःस्वनोऽप्यस्य भीमः ।
मिथ्यैवाद्यं यदवधि मया वीक्षितस्तादृशोऽयं
कन्दर्पो मां तदवधि दहत्येव बाणैरमद्यैः ॥२५

आस्ते चैवमिति । एवंभूतो नवजलधरोऽपि आस्ते । यं बिलोक्य विषधरभुजो मयूराः प्रमोदाः हर्षाः सन्तः नृत्यन्ति । अस्य निस्वानो भीमः एतन्निशाचष्टे मिथ्यैवेति आद्यं यं बिलोक्य प्रमोदा इति मिथ्यैवेति अस्य कारणं स्पष्टयति—यद्वधीति । तादृशो नवजलधरसदृशो यदवधि मया वीक्षितस्तदवधि अयं कन्दर्पः असह्यैरतिशयपीडाजनकैर्वाणैर्मां दहति इत्यर्थः । एतेन तादृश इत्यादिना यस्य प्रतिरूपकदर्शं पीड़ाजनकं तदेव जनकमिति मिथ्यैवेति व्यक्तः ॥ २५ ॥

हे पदांक! देख, भयानक शब्द वाला नवीन मेघ का दर्शन कर मयूर गण अत्यन्त प्रमोद से नृत्य करने लगते हैं। उस शब्द से उनको महान् आनन्द होता है। परन्तु जब से मैंने नवीन जलधर तुल्य उन श्रीहरि का दर्शन किया है तब से यह कन्दर्प निज असह्य वाणों से मुझे दहन कर रहा। भावार्थ—कठोर शब्द वाला मेघ मयूर के लिये सुख रूप होता है, परन्तु विरह पीड़िता हम सब व्रजवालाओं के लिये उस की तुल्यकान्ति को धारण करने वाले वे श्रीहरि क्यों दुःखदायी हो रहे हैं? उसे नहीं कह सकती हूँ ॥२५॥

क्रोशस्यान्ते चरणयुगलं क्ष्यालयच्छूरजायां
यायाः किञ्च क्षणमपि तरोर्मूलमासाद्य तिष्ठेः।
उत्कृष्टं यज्जनयति पदं सेवकानां जनानां
पद्भ्यां हानं तदिति जगतां प्रत्ययः कूर्म्मलोमः ॥२६

क्रोशस्यान्त—आर्थीय तया अहं स्पष्टमिति क्रोशस्यान्त इति । क्रोशस्यावशाने सूरजायां यमुनायां चरणयुगलं चालयन् यायाः गच्छेरित्यन्वयः । किञ्च क्षणमपि वरोर्मूलमासाद्य तिष्ठेः एतेनातिशयश्रमप्रचितानामस्माकमनुरोधेन बहुतरकष्टेन मा गच्छेरिति व्यक्तम् । क्षणमित्यनेन अतिक्लान्तिहरणतया किञ्चित् कालमात्रं तिष्ठेः नातिरिक्त-

मिति, मादृशां विलम्बासहत्वात् । ननु निश्चरणस्य मम कथं चरण-चालनमित्याह--उत्कृष्टमिति यत्सेवकानां यत्स्मरणकारिणां उत्कृष्टं आचार्य्यपदं स्थानं जनयसि तत्पद्मयो हानरहितं जगतां सर्व्वेषामिति प्रत्ययः, इति ज्ञानं कूर्म्मरोमः कूर्म्मपदप्रकारकरोमविशेषकज्ञानालम्बि इत्यर्थः । एतेन कूर्म्म इत्यस्य भ्रमतया अस्यापि भ्रमत्वं सूचितम् ॥२६॥

मार्ग में जाता हुआ तुम यमुना में अपने दोनों चरण को धोना एवं क्षण काल वृक्ष के नीचे रह कर विश्राम लेना । भागवत जनों का जो सर्वोत्कृष्ट उन्नत पद है उसके सम्बन्ध में सांसारिक जनों का कछुए के रोम के समान मिथ्याज्ञान है । अर्थात वे उस पद को नहीं समझ पाते हैं । भावार्थ–यदि कहो कि चरण रहित मैं किसे धोऊँगा तो सुनो, जिसके स्मरण करने वालों को उत्कृष्ट आचार्य्य पद तक मिल जाता है वह निश्चरण विशिष्ट ऐसा नहीं है । ॥२६॥

आरुह्यास्मत् हृदयमथवा गच्छ तुङ्गैस्तुरंगै-
सौरन्तेजो सजलजलदच्छायया वारणीयम् ।
वृष्टिं नैव त्वदुपरि करिष्यत्ययं चण्डरश्मिः
खेदाशङ्की सरसिजसखस्त्वद्धृताम्भोरुहस्य ॥२७

आरुह्यास्मादिति । उत्कृष्टतया पदव्रजगमने अतिशय अस्थिमा-शङ्क्य निराचष्टे आरुह्यास्मादिति । अस्माकं हृदयरूपं तुरङ्गमत्यन्तवेग-वन्तं तुरङ्ग आरोहणं कृत्वा गच्छ इत्यन्वयः । रौद्रस्यापि क्लेशकरत्व-मित्याशङ्क्याह–सौरं तेज इति सजलजलदच्छायया तदपि वारणीयं, वृष्टिभयमाशङ्क्याह–वृष्टिं नैवेति पतद्गताम्भोरुहस्य त्वदुपरि स्थित-स्याम्भोरुहस्य खेदाशङ्की मित्रक्लेशस्य खेदकरत्वात् चण्डरश्मिः सूर्य्योऽपि वृष्टिं न करिष्यति इति भाव ॥ २७ ॥

हे पदांक ! हम सबके हृदय रूप रथ में बैठ कर तुम गमन करना, जिसमें कि उत्कण्ठा रूप वेगवान घोड़े जोड़े हुए हैं। तुम सजल मेघ की छाया से सूर्य्यतेज: का निवारण करता हुआ जाना। देख, प्रचण्ड किरण वाला वह सूर्य्य तुम्हारे ऊपर निज किरण की वर्षा नहीं करेगा। अर्थात् सूर्य्य किरण तुम्हारे लिये परम सुख रूप होगा। क्योंकि तुम में कमल मौजूद है, एक ही साथ दोनों की स्थिति है। तुम तो कमल के सखा हो, सूर्य्य किरण से कमल मलिन न होकर प्रस्फुटित ही होता है ॥२७॥

एतेन स्यान्मधुपुरगतिः केन मे पङ्किलोऽभूत्
पन्था नन्दव्रजकुलभुवां लोचनाम्भोभिरुच्चैः।
नो वा शङ्का हरिविरहजोत्तापितऽपीन्दुवक्त्रे
नित्योत्परोन्नयनपयसां वाक्यमेतन्निरस्तम् ।।२८

एतेन स्यादिति, ननु पङ्किलादिभयेन गमनाशङ्केति ॥ २८ ॥

हे पदांक ! "नन्दगोकुल की रमणियों के नयन जल से गमन मार्ग कीचड़ हो रहा है, मैं किस प्रकार जाऊँगा" ऐसा शङ्का मत करो। क्योंकि यद्यपि वह मार्ग गोपियों के नयन जल से आर्द्र है तो भी हरिविरह जात प्रचण्ड उत्ताप से सूख गया है। अत: इस प्रकार शङ्का करके तुम गमन विरत मत होना ॥२८॥

अद्भिस्ताभिस्तरणितनया पीनतां नैव लब्धा
गोपीभर्त्तुर्विरह दहनैः प्रत्युत क्षीणताश्च।
नो चेदेवं सलिलतरसा गोकुले मास्तु किञ्चित्
प्रस्थानन्ते किल मधुपुरे निर्विरोधि क्रमाङ्क ! ॥२९

सापि यमुना वर्द्धमाना इत्याशङ्क्याह—अक्षिस्ताभिरिति । नो चेदिति न क्षीणां ह्यपि तु वर्द्धमाना चेत्तदा मास्तु तव प्रस्थानं मथुरायां गोकुले गमनं निर्विरोधि एकपारत्वेन यमुनापारस्याप्रसक्तेरितिभावः॥२९

गोपियों के नयन जल से यद्यपि श्रीयमुना बढ़कर द्विगुणित प्राप्त है तौ भी उसे क्षीण रूप जानना। क्योंकि वह तो गोपीपति श्रीहरि की विरहाग्नि से सूख गयी है। यदि वह नहीं सूखती तो गोपियों के नयन जल की वेगता से भर भर कर समस्त ब्रज को बहा लेती। हे क्रमांक ! अतः तुम्हारे मथुरा गमन में कोई प्रतिकूल नहीं होगा। वस्तुतः यमुना उनके वियोग से क्षीण हो गयी है ॥२९॥

क्षीणैवास्ते तरणितनया वस्तुतस्तद्वियोगे
का वा पीना भवति वचनं कस्यचिन्नेतियुक्तम् ।
गोपस्त्रीणां नयनसलिलैर्वर्द्धते सा विशीर्णा
अन्ये नन्दव्रजपुरजना नूनमित्यर्थकं यत् ॥३०

क्षीणेरिति—गोकुलेऽपि गमनं निर्विबाधमित्याह क्षीणेवेति। वस्तुतः यथार्थतः तरणितनया क्षीणैवास्ते यतस्त्वतद्वियोगे का वा पीना भवति न कापीत्यर्थः, इति हेतोः गोपस्त्रीणां नयनसलिलैः सा यमुना वर्द्धते, अन्ये नन्दव्रजपुरजना विशीर्णा इत्यर्थकं कस्यचित् वचनं न युक्तमित्यर्थः तद्वचनञ्च "शीर्णा गोकुलमण्डली पशुकुलमित्यादिरिति" ॥ ३० ॥

उनके वियोग से कौन रमणी क्षीणता को प्राप्त नहीं हुई। इस विषय में अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता है। गोपरमणियों के नयन जल से यमुना बढ़ भी जाती है इस में भी कोई सन्देह नहीं है। ब्रज की अन्यवस्तु सब की यही दशा बीत रही है। महानुभाव ने "शीर्णा गोकुल मण्डली" इस पद्य में इसका सरस वर्णन किया है ॥३०॥

सामग्री चेन्न फलविरहो व्याप्तिरेवेति तत्त्वं
तत्त्वं गोपीनयनसलिले केवलेऽप्यस्ति नैवम् ।
उत्कण्ठायां हृदि न कुरुते कारणानां सहस्रं
लक्षं वापि क्षणमपि यतः पीवरत्वं जनानाम् ॥३१

सलिलवृद्धिरूपकारणसत्वात् कार्य्यरूपायाः पीनतायाः कथं नोत्पाद इत्यत्राह सामग्री चेत् यदि कारणसमुदायः तदा न फलविरहः फलानुत्पादः फलावश्यम्भावः यत्क्षणे यत्प्रध्वंसवदीयसामग्री तदव्यवहितोत्तरक्षण तदुत्पाद इति यावत् । इति व्याप्तिरेव निश्चय एव न तु यत् किञ्चित् कारणसत्त्वे कार्यावश्यम्भावः इत्येव कारणत्वां विवृत्याह-तत्त्वं सामग्रीत्वं केवलेऽपि उत्कण्ठाविरहरूपकारणासहितेऽपि गोपीनयनसलिलेऽस्ति नैवमित्यर्थः । कारणसमुदाय एव तत्वात् उत्कण्ठाविरहस्य पीनताकारणत्वे व्यतिरेकसहचारं दर्शयति उत्कण्ठायामिति—हृदि चिरो उत्कण्ठायां सत्यां कारणानां पीनताकारणानां सहस्रं लक्षं वापि क्षणमपि जनानां पीनत्वं न कुरुते इत्यर्थः । उत्कण्ठाविरह व्यतिरेक उत्कण्ठा तत्सत्वे पीनता व्यतिरेक सहचरेः लक्षं वापीत्यपिकारात् उत्कण्ठा विरहातिरिक्तकारणसमुदायः समुचितम् ॥ ३१ ॥

सामग्री के रहने पर फल का विरह अर्थात् फलाभाव नहीं है, ऐसा नियम है । परन्तु यह नियम आज गोपियों के नयन जल में नहीं घटता है । क्योंकि जनों के हृदय में उत्कण्ठा के रहने पर हजारों लाखों वा कारण क्षण काल में उसे स्थूल नहीं बना सकते हैं। तात्पर्य-यद्यपि गोपियों के नयन जल से यमुना विपुलतरा हो सकती थी अर्थात् उसकी वृद्धि के लिये नयन जल रूप सामग्री मोजूद है परन्तु श्रीहरि के विरह उत्कण्ठा से वह वृद्धि रूप फल को प्राप्त न होकर क्षीणतारूप का ही लाभ कर रही है ॥ ३१ ॥

तस्मात्तस्या विरतिरथवा हेतुरन्यादृशो स्यात्
न स्यादेवं क्वचिदपि फलं कारणासन्निधाने ।
नष्टे हेतौ प्रभवति कुतः कार्य्यमित्यप्ययुक्तं
यागेऽपूर्व्वादिव जनकता द्वारतस्तस्य सिद्धा ॥२२

उत्कण्ठाविरहस्य हेतुत्वमुपसंहरति तस्मादिति । तस्मात् उत्कण्ठासत्वे कार्य्यानुपादात् । तस्या उत्कण्ठाया विरतिः विरहः अस्याः पीनतया हेतुः अथवा अन्यादृशो गोपीनयनसलिलातिरिक्तः कश्चित् तस्याः हेतुः उत्कण्ठाविरहसत्वे नियतसत्वाक इति शेषः यद्वा अन्यादृशः उत्कण्ठाविरोधी कश्चिदित्यर्थः । ननु तस्य हेतुत्वेऽपि तं विनापि पीनता स्यादित्याह कारणासन्निधाने कारणासत्वे फलं किञ्चिदपि न स्यादेव न भवत्येव इति अत्र बाधमाशङ्क्य निराकरोति--नष्टे हेतौ अनुभवादिकारणे नष्टे सति कुतः केन कार्य्यं स्यादिति शेषः । इत्यपि इत्याशंकनमप्ययुक्तम् । यतस्तस्य नष्टहेतोरनुभवादेर्द्वारतः स्वकार्य्यसम्बन्धात् संस्कारादिरूपस्वकार्य्यसम्बन्धादिति यावत् सिद्धानिश्चिता अत्र दृष्टान्तः यागे अश्वमेधादौ अपूर्व्वादृष्टरूपकार्य्यसम्बन्धसत्वात् यथा स्वर्गादिजनकता तथान्यत्रापि इत्यर्थः । तथा च साक्षात्सम्बन्धेन व्यापारसम्बन्धेन वा कारणसत्वस्य कार्य्योत्पत्तिनियामकत्वमिति यागादेः स्वर्गादिसाधनत्वस्य वेदबोधितत्वेन चिरध्वस्तं फलायालं न कर्मातिशयं विना इति न्यायेन मध्य यागादेरपूर्व्वसिद्धिरावश्यकीतिभावः ॥ २२ ॥

अब विरह उत्कंठा के हेतु क्या है इसे बतलाती है । उत्कंठा है परन्तु कार्य्य नहीं दिखता है इसलिये उत्कंठा का विराम पीनता (पुष्ट) का हेतु है अथवा अन्य प्रकार हेतु भी हो सकता है। कहीं कारण के मौजूद रहने पर भी फल नहीं दिखने में आता है । कहीं कारण के नष्ट हो जाने पर भी कार्य्य का मौजूद

है यह युक्ति भी अयुक्त है। अश्वमेधादि यज्ञ में अदृष्ट रू कार्य्य का सम्बन्ध रहता है, स्वर्गादि प्राप्त की सम्भावना उसमें मौजूद है ॥ २२ ॥

क्लेशोऽस्माकं मलयपवनैः मूर्च्छया चोपकार–
स्तस्मात्सर्व्वं किल विधिकृतं कारणं कारणं न ।
अम्भोजानाममृतकिरणज्योतिषा म्लानिरुच्चै–
रुग्रज्योतिः किरणमिलनाज्जायते च प्रकाशः ॥२३

ननु विरोधिना सलिलस्यैव नदीपीनताहेतुत्वमुक्तं नतु कण्ठाविरहादेरिति विधिकृतनियामबाधकमाह क्लेशोऽस्माकमिति । मलयपवनैर्मलयपर्व्वतसम्बन्धिवायुभिः दक्षिणानिलैरिति यावत्, अस्माकं क्लेशो अस्माकं उपकारश्च मूर्च्छया उभयत्र इदानीमिति पूरणीयम् । श्रीकृष्ण योगकाले मलयपवनैः सुखस्य जनितत्वात् मूर्च्छाया विद्वेष्यत्वाच्च इति तस्मात् विपरीतदर्शनात् किल निश्चितं सर्व्वं विधिकृतं विधिनिर्दिष्टं कारणं न कारणमित्युन्नेयः । अस्य च कारणपदार्थैकदेशे कारणत्वे इत्युन्नेयः । तेन विधिनिर्दिष्टकारणता किमित्यर्थः । मादृक् क्लेशादिजनकत्वेनाभिमतानां मलयपवनादीनां विधिकृतत्वेऽपि न क्षतिः । विधिना मलयपवनानां सुखजनकत्वेनैवोक्त रिति भावः । सर्व्वसाधारण्योदाहरणमाह-अमृतकिरणस्य चन्द्रस्य ज्योतिषा तेजसा अम्भोजानां पद्मानां म्लानिर्जायते उच्चैरुग्रज्योतिषः अतिशयतीक्ष्णतेजसः सूर्य्यस्य किरणमिलनात् किरणसम्बन्धात् अम्भोजानां प्रकाशश्च प्रफुल्लता च जायते इत्यर्थः । अत्र विधिकृतं वैपरीत्यं सर्व्वैरेवावधारितं इतिभावः ॥२३॥

मलय पवन से हम सब की अधिक दुःख दशा हो जाती है। मूर्च्छा भी हमारे परम उपकारिणी बन जाती है। तात्पर्य्य-मूर्च्छा के हो जाने से दुःखानुभव का अभाव हो जाता है। उस समय इन्द्रियों की वृत्तियाँ निश्चेष्ट रहती हैं। अतएव "कार्य कारण

भाव के जो कुछ विधान है वह विधाता के द्वारा नियमित होता है। विधाता के विधान को ही मानना चाहिये। कारण (सामग्री) के रहने पर कार्य्य (फल) होता है यह नियम स्थिर नहीं है, देखो, कोमल चन्द्रकिरण से कमलों की म्लानि हो जाती है तथा प्रचण्ड सूर्य्य उत्ताप से वे सब विकास को प्राप्त होते हैं। इसका क्या कारण है वह नहीं कहा जा सकता है ॥२३॥

स्त्रीभिः प्रेम प्रियतमगतं नैव शक्यं विहातुं
याचे त्वां किल मधुपुरी चंक्रमाय क्रमाङ्क।
दग्धेनापि व्यथितहृदया पञ्चबाणेन बाणैः
क्रूरैरुच्चैर्म्मदनवनिता तत्कृते रोदिति स्म ॥३४

ननु किमर्थमिति प्रार्थना क्रियते कृष्णस्य दुर्जनत्वेन वर्जनीयत्वादित्यत्राह—स्त्रीभिरिति। हरे कोपानले दग्धेनापि पञ्चबाणेन कामदेवेन स्त्रीभिः प्रियतमगतं प्रेम विहातुं शक्यं नैव अतः हे क्रमाङ्क! मधुपुरीं चंक्रमाय मथुरागमनाय त्वां याचे प्रार्थये इत्यर्थः। अत्र दृष्टान्तः दग्धेनापि हरे कोपानले दग्धेनापि पञ्चबाणेन कामदेवेन कर्त्रा क्रूरैर्बाणैः करणैः व्यथितहृदयापि मदनरमणी रतिस्तत्कृते तन्निमित्तं कामदेवप्राप्त्यर्थमिति यावत् उच्चैरतिशयेन रोदिति स्म रुरोद ॥२४॥

हे पद्मांक! सुनो, प्रियतमगत प्रीति का त्याग स्त्रियों से असम्भव होता है, इस शरीर में जाकर प्राणवल्लभ के साथ मधुपुरी में भ्रमण करने के लिये प्राण तो चाहता है, परन्तु कुलकामिनी हम सब के लिये वह असम्भव है। महादेव के कोपानल से दग्धप्राप्त काम के पञ्चबाणों से व्यथित हृदया उसकी वनिता रती उसके लिये रोदन करती रहती है। प्रीति त्याग असम्भव है ऐसा जानना ॥२४॥

आस्ते चित्ते किल कलयितुं वासना शम्बरारे-
रेकैकेन व्रजकुलवधूप्राणमेकैकमङ्क ।
बाणेनातः सततमतनुर्यातिकोपाहितुल्यैः
क्रूरैरस्मान् दहति कुसुमैः सायकैः पंकजाङ्कैः ॥२५

पदाङ्कस्य कायवयार्थी श्रीकृष्णसन्निधाने सन्देशार्थञ्च प्रसङ्गात् स्वीयकामकृतपीडामाह आस्ते इति । हे कमाङ्क एकैकं व्रजकुलवधूप्राण-मेकैकेन बाणेन कलयितुं किल निश्चितम् । सम्बरारेः कन्दर्पस्य चित्ते मनसि वासनाभिलाष आस्ते अतस्तादृक् वासनाहेतोः अतनुः कन्दर्पः पञ्चसंख्यैः कुसुमैः कुसुमात्मकैर्बाणैरस्मान् दहति इत्यर्थः । प्राणानां पञ्चसंख्यत्वात् प्रत्येकनाशार्थं पञ्चसंख्याबाणा एव कामेन योजिताः ते च बाणाः-सम्मोहनोन्मादनौ च शोषणस्तापनस्तथा । स्तम्भनश्चेति कामस्य पञ्चबाणाः प्रकीर्तिताः ॥ सायकैः किं भूतैर्जातः कोपो यस्य स चासौ अहिः सर्पश्चेति जातकोपाहिस्तत्तुल्यैः अतएव क्रूरैर्निर्दयैः । यथा त्वया कालियनागात् सवत्सपानारक्षितास्तथा वयमपि कामबाणा-त्मकनागेभ्यो रक्षणीया इति श्रीकृष्णप्रार्थनं व्यङ्ग्यम्, महादेवकृतनिग्रह-त्वेन पुनरुत्कटकोपत्वमतनुशब्देन व्यञ्जितः ॥२५॥

व्रजबालाओं के प्राणों को एक एक बाण से एक एक करके विद्ध करने के लिये शम्बरारी काम की निरन्तर वासना रहती है । अतः वह क्रोधित होकर कमलकुसुम मय अपने पञ्च बाणों से हमारे पञ्चप्राणों को एक एक करके दहन कर रहा है । राधिका के इस वचन से यह व्यञ्जित होता है कि—हे कृष्ण ! जिस प्रकार तुम ने कालियनाग से व्रजवासियों की रक्षा की ठीक उसी प्रकार व्रज में आकर विरह सन्तापित हम सब व्रजरमणियों को कामबाण से सुरक्षित कीजिये "२५॥

यल्लोकानामपकृतिभयात् कालकूटोऽपि पीत-
स्तानेवायं दहति गरलैस्तादृशैराचितेन ।
बाणेनेति त्रिपुररिपुणा जातकोपेन दग्धो
नेत्रोत्थेन प्रबलशिखिना निर्दयं शम्बरारिः ॥३६

कामस्य दुरन्तत्वञ्च प्रसिद्धमित्याह यल्लोकेति । ये लोका यल्लोका इति यल्लोकानां येषां लोकानां अपकृतिभयात् अपकारशङ्कया त्रिपुर-रिपुणा शिवेन कालकूटोऽपि समुद्रोत्थविषविशेषोऽपि पीतः तानेव लोकान् अयं कामः तादृशैः कालकूटसदृशैः गरलैर्विषैराचितेन लिप्तेन बाणेन दहतीतिहेतो जातकोपेन त्रिपुररिपुणा कर्त्रा नेत्रोत्थेन प्रबल-शिखिना ललाटस्थनेत्रादुत्थितप्रज्वलदग्निना करणेन निर्दयं यथा स्या-त्तथा सम्बरारिर्कामदेवो दग्ध इत्यर्थः ॥३६॥

हे पदांक ? देखो, लोगों का अपकार न हो जाय, इस लिये महादेव जी ने कालकूट गरल का पान किया है । परन्तु खेद यह है कि आज कामदेव उन लोगों को अपने बाण संलग्न गरल से ही बार बार जला रहा है । जिसके कारण महादेव जी ने क्रोधित होकर नेत्रोत्थ प्रबल अग्नि के द्वारा उसको जलाय भी दिया था । इतने पर भी वह भस्मान्त अवस्था में रह कर भी अपने सामर्थ्य को नहीं छोड़ना चाहता है ॥३६॥

नैवं न्यूनः सगरजगरः शम्बरारेः शरस्य
ब्रह्मादीनामयमपि यतो धैर्यविध्वंसहेतुः ।
एतद्वाक्यं गिरिशचरणैः खण्डितं पण्डिताद्यै
रस्या सङ्गाद्व्यथितहृदयैर्निर्दयं दग्धुकामैः ॥३७

किञ्च कालकूटादपि कामबाणानां दुर्द्धर्षत्वमाह-नैवमिति । साग-रात् सागरवंशाज्जातः सागरजः सागरः तस्य गरः कालकूटः सम्बरारेः

शरस्य एवं प्रकारेण लोकानां दाहकत्वेन न न्यूनः सम इत्यर्थः। ननु शरस्य ब्रह्मादिधैर्यनाशकरत्वेन गुरुत्वमित्याशङ्क्याह अयमपि सगरज-गरोऽपि यतो ब्रह्मादीनां धैर्यविध्वंसहेतुरतो न न्यून इत्यर्थः। सागरम-थनाद्विषे उत्थिते विष्णुब्रह्मादीनामपि दाहेन पलायनं पुराणादौ प्रसिद्ध-मिति। एतद्द्वयं गिरिशचरणैः खण्डितं कामबाणानामाधिक्यप्रक-टनात् आराध्यानां प्रयोगे कर्त्तव्ये भक्त्या तच्चरणानामेव प्रयोगः क्रियते शिष्टैरिति गिरिशचरणैरित्युक्तम्। तत्र गिरिशो महादेवः किम्भूतैः अस्य कामबाणस्यासङ्गात् ईषत्सम्बन्धात् व्यथितहृदयैः अतएव निर्द्धं यथा स्यात्तथा दग्धुकामैः अर्थात् कामं यद्वा निर्दयं कामं दग्धुकामैरिति कालकूटेन शिवस्य व्यथा न जनितेति भावः। पुनः किम्भूतैः पण्डिताद्यैः पण्डिताः योगिनस्तेषामाद्यैः मुख्यैरित्यर्थः॥३७

कामदेव के बाणों के आगे गरल भी तुच्छ नहीं है। जिस प्रकार कामदेव के बाण ने ब्रह्मादि देवगण का धैर्य नष्ट किया था ठीक उसी प्रकार समुद्र जात गरल ने भी उत्पत्ति के समय ब्रह्मादि देवताओं का धैर्य्य नाश कर दिया। उसके भय से देवतागण भागने लगे थे ऐसी पुराणों में प्रसिद्धि है। परन्तु महादेव चरण ने उसका अन्यथा किया अर्थात् दोनों को अन्य प्रकार करके दिखलाया। भावार्थ—गरल का पान तथा काम को भस्मान्त किया है। गरल से कामबाण के अधिक सामर्थ्य दिखने में आया। क्योंकि गरल पान से महादेवजी का कोई विशेष दुःख लेश नहीं हुआ था परन्तु कामबाण से वे तो एक ही बार पीड़ित हो गये थे॥ ३७॥

उत्तापोऽयन्मदतजनितो वर्द्धते नित्यमुच्चै-
र्वृन्दारण्ये वसतिरधुना केवलं दुःखहेतुः।
किञ्चास्माकं नयनसलिलैर्वर्द्धते चेन्नदीयं
केन स्थेय द्रु   कुञ्जमध्ये ३८

कामबाधां निर्दिश्य प्रस्तुतमुपसंहरति उत्तापोऽयमिति । अयं यथा निर्दिष्टः मदनजनितः उत्तापो नित्यं प्रत्यहमेव उच्चैरतिशयं बन्दे ननु विरलो भविष्यतीति दृश्यत इति भावः । अतोऽधुना वृन्दारण्ये वसतीति केवलं सुखसम्पर्कहीनं यथास्यात्तथा दुःखहेतु र्भवतीति शेषः। किञ्च अन्यच्च यदि अस्माकं नयनसलिलैरियं वर्द्धते तदा केन प्रकारेण कुञ्जमध्ये स्थेयमस्माभिरित्यर्थः । दुःस्थताहेतुविशेषणं कुञ्जमध्यस्याह द्रुतगतिमद्भिर्यमुनाजलैराचिते व्याप्ते द्रुतगति इत्यनेन पलायनासामर्थ्यमुक्तम् ।। वैक्लव्येन प्रागुदाहृतगहनोत्कण्ठां विस्मृत्य एवाण्ठद्वृद्धिव्यक्ते ति बोध्यम् ॥ ३८ ॥

यह कामजात उत्ताप तो नित्य प्रति बढ़ता रहता है । वह हम सबके बस बास इस वृन्दावन में केवल दुःख का कारण रूप बन गया है । सुनो, यदि हम सबके नयन जल से वह यमुना बढ जायगी तो जल की द्रुतवेगता से कुञ्ज मध्य में हमसे कैसे रहा जावेगा ? क्योंकि समस्त तो जलमय हो जायेगा । अथवा प्राण भय लेकर कोई भाग भी नहीं सकती है ॥ ३८ ॥

यस्य ध्यानं जनयति सुखं यादृशं तादृशं न
स्वर्लोकादावपि किमपरं ब्रह्मसाक्षात्कृतौ च ।
ज्ञेयञ्चैतन्मुनिवरमुखाम्भोजतः कीदृशी ते
बुद्धिस्तादृक्जनकविषये दर्शने नास्ति यत्नः ॥३९

तद्दर्शनेन परानन्दो भावीत्यवश्यं गन्तव्यमित्याशयेनाह । यस्य श्रीकृष्णचरणस्य ध्यानं यादृशं सुखं जनयति तादृशं सुखं स्वर्लोकादावपि स्वर्गादावपि न अपरं किं वक्तव्यं ब्रह्मसाक्षात्कृतौ च नेत्यर्थः । ब्रह्मानन्दतोऽपि श्रीकृष्णस्य घनीभूतपरानन्दस्याधिक्यं शास्त्रे लोके च प्रसिद्धमिति भावः । अत्र किं मानमित्याशङ्क्याह मुनिवरो नारदादिस्तन्मुखाम्भोजतः नारदादिमुखपद्मतो ज्ञेयमित्यर्थः । गमनारम्भमन-

बेदयाह-तादृक्जनकविषये दर्शने यत्नो नास्ति अतस्ते तव बुद्धिः कीदृशी न समीचीनतया भातीत्यर्थः । तादृक् निरुक्ते परानन्दः स चासौ जनकश्चेति तादृक् जनकः सविषयो यस्य तस्मिन् लोको हि सामान्यपितृदर्शनार्थमुत्सुको भवति, त्वन्तु एतादृशपितृदर्शने निरुत्सुकतया लक्ष्यसे इति तव नोचितस्तवेति भावः ॥ ३९ ॥

श्रीहरिचरणों का ध्यान करने पर जिनके महान् सुख सम्पत्ती का लाभ होता है उनके वह सुख लाभ साधारण व्यक्ति में अत्यन्त अभाव है । वह सुखानुभव उत्तम से उत्तम लोक में तथा ब्रह्मसाक्षात्कार में भी प्राप्त नहीं है । हम सब ने मुनिवर नारदजी के मुख से इसका अनुभव किया है । हे पद्मांक! न जाने तुम्हारी कैसी बुद्धि है, जो कि तुम उस प्रकार आनन्दानुभव के जनक श्रीहरिचरणों के दर्शन में यत्नवान नहीं होते हो ॥ ३९ ॥

वक्तव्यं यन्मदनजनितं दुःखमस्माकमेत-
द्भूयो भूयः प्रियतमपदे गोपयित्वा स्वदेहम् ।
दृष्टे तेन त्वयि नयनयोर्निस्तुलप्रीतिहेतौ
यास्यत्येव क्षणमपि मनस्तत्कथायां न तस्य ॥४०

पद्माङ्क सत्त् कुर्व्वती वक्तव्यमिति-अस्माकं यत्मदनजनितं दुःखं एतत् प्राक् प्रतिपादितं स्वदेहं गोपयित्वा प्रियतमपदे श्रीकृष्णचरणे भूयो भूयः पुनर्वक्तव्यमित्यर्थः। स्वदेहगोपने हेतुमाह दृष्ट इति तेन श्रीकृष्णेन त्वयि दृष्टे सति तस्य श्रीकृष्णस्य मनः क्षणमपि तत्कथायां मादृङ् मदनजदुःखकथायां न यास्यत्येव अपि तु त्वय्येव यास्यतीत्यर्थः । कथमित्यपेक्षायां विशेषणमाह नयनयोर्निश्चलप्रीतिहेतौ तासामतिशयहर्षजनक ॥ ४० ॥

हे पदांक! प्रियतम के चरणों में हम सब की इस मदन जात तीव्र व्यथा का अवश्य निवेदन करना। देख! निवेदन के समय अपने शरीर को गुप्त कर लेना। क्योंकि अतुलनीय प्रीति के कारण रूप तुम्हें नयनों से देख कर उनका मन उसमें फंस जाएगा। अतः उस समय वे तुम्हारे हम सबके दुःख मय निवेदन को नहीं सुन सकते हैं ॥ ४० ॥

वक्तव्यं च स्फुटमिति यदा निर्जनस्थो मुकुन्दः
पश्चाद्यङ्कै रतिसुललितैरङ्कितं तत्पदाब्जैः ।
वृन्दारण्यं स्मरसि न कथं श्रीपते मञ्जुकुञ्जं
जन्यं ज्ञातं यदिह च परीरम्भणं कुब्जिकायाः ॥४१

गमनं निश्चित्य किञ्चिद्रहस्य सन्देशमाह वक्तव्यञ्चेति। यदा निर्जनस्थो मुकुन्दस्तदा स्फुटं यथा स्यात्तथा इति वक्तव्यं किमित्यत्राह-श्रीपते: श्रीः शोभा तत्पतेः परमसुन्दरस्य इति यावत्। लक्ष्मीपते इति वार्थं वृन्दारण्यं न स्मरसि किम्भूतं मञ्जुकुञ्जं मञ्जुनि मनोहराणि कुञ्जानि यस्मिन् तत्पुनः किम्भूतं तत्पदाब्जैरङ्कितं चिह्नितं तद् किम्भूतैरति सुललितैरतिसुन्दरैः पदाद्यङ्कैः तद् विशिष्टैरिति विशेषणे तृतीयाऽथ इति सुललितैरिति पदाब्जविशेषणं पदानि अङ्कानि येषु तैरिति च तद्विशेषणं, पदाब्जैरिति बहुवचन आदरेण अनेकचिन्हाभिप्रायेण वा, मञ्जुकुञ्जमित्यनेन लीलास्थानोपन्यासेन लीलापरिकरस्थगोपिकादीनामपि ज्ञापनं पदाङ्कितत्वेन स्वविहारस्थलं क्वापि न विधिकृतमिति सूचितम्। तत्र जन्यं निमित्तं ज्ञातं किन्तु यदिह वृन्दारण्ये कुब्जिकायास्त्रीवक्रायाः परिरम्भणं आलिङ्गनं न इत्युन्नेयः। यदित्यस्य नञार्थे अम्नायात् उत्तरे पदे यच्छब्दात् तच्छब्दापेक्षणाभावाच्च। वृन्दारण्ये यत् कुब्जिकालिङ्गनाभावः स एव वृन्दारण्यस्मरणहेतुमिति पर्य्यवसितम्। एतेन तव वैदग्ध्यं लोके प्रकटीभूतमिति भावः। यत् यत इति वा ॥ ४१ ॥

जिस समय मुकुन्द एकान्त में बैठे होंगे उस समय तुम स्पष्ट रूप से उनको कहना, हे श्रीपते ! आप पद्मादिचिन्हों से युक्त अपने चरणों से अङ्कित वृन्दावन के मनोहर कुञ्ज का स्मरण क्यों नहीं करते हैं ? इसका कारण यह है क्या कुब्जा के आलिंगन सुख से आप निविष्ट हैं ॥ ४१ ॥

आकांक्षाया ग्लपयति मनो मादृशां वासना सा
शाब्दे धर्म्मे सति न भविता हानिरेव क्रमाङ्क ।
साकांक्षोक्त्या मुरहरपदे सर्व्वमेतन्निवेद्यं
नो चेत्तस्य प्रमितिजनने केन हेतुस्तवोक्तिः ॥४२

ननु यदि निराकांक्षयवाक्येन भवतीनां सन्देशः श्रीकृष्णनिकटे निवेद्यते तदा शाब्दबोधहेतुभूताया आकांक्षाया विरहादेव तेन वाक्येन शाब्दबोधानुपपत्ते विफलः शब्दप्रयोगः स्यात् यदि च साकांक्षावाक्य-प्रयोगेन सन्देशो निविद्यते तदा आकांक्षयैव मनः पीड़ा स्यात् सदूरः शाब्दबोधः भवतीनामेव कृष्णाकांक्षाया मनो दुःखजननस्य दृष्टत्वादित्य-त्राह आकांक्षेति या आकांक्षा मादृशां मनो ग्लपयति पीडयति सा वासना कृष्णाभिलाषात्मको मनो धर्म्म इत्यर्थः । शाब्दे धर्म्मे शब्दनिरूपिते शब्दनिष्ठे वाकांक्षारूपधर्म्मे सति हे क्रमाङ्क हानि नं भवितैव इत्युन्नेयः । अत एतन्मदनजनितदुःखादिकं सर्व्वं साकांक्षावाक्येन मुरहर-पदे निवेद्यम् । नो चेत् वाक्यस्य साकांक्षता नो चेत् तवोक्तिः तस्य श्री कृष्णास्यां प्रमितिजनने वाक्यार्थयथार्थबोधजनने केन प्रकारेण हेतुः स्यात । प्रमितिजनिकाया आकांक्षाया अभावादिति श्लेषेण मादृशामाकांक्षानि शब्देन कथनीया तत्र दुःखं न भविष्यति मादृशामाकांक्षायामनिवेदि-तायां स्वस्मिन् मादृशामाकांक्षाविरहमाशङ्क्य विरहदुःखादिजातं न

भाव श्लेषार्थं साकांक्षोक्त्या इत्यस्य

वाक्येनेत्यर्थः । शाब्दे ज्ञाने इत्यस्य शाब्दे बोधे इत्यर्थःइति । श्लेषालङ्कारमाह भरतसूत्रं—"श्लेषः स्याद्वाक्य एकस्मिन् यत्रानेकार्थता भवेदिति" ॥४२॥

हे पदांक ! सुनो, निरन्तर उनकी आकांक्षा मन में ग्लानि पहुँचाती है । हम सबकी वह वासना हानि नहीं हो सकती है, क्योंकि शब्द धर्म्म उसमें मौजूद रहता है, उसके रहने पर आकांक्षा नहीं मिटती है । तुम उनके चरणों में आकांक्षायुक्त से इन सब बचनों का निवेदन करना । नहीं तो उन का प्रमा उत्पादन में अर्थात् विश्वास उत्पन्न कराने में असम्भव होगा ॥४२॥

आगन्तव्यं सरसिजदृशा बोधितेन त्वदुक्त्या
नाप्रत्यक्षं प्रमितिकरणं वाक्यमेतन्न मानम् ।
स्वीकर्त्तव्यं नयनविरहापत्तिभित्येति सर्व्वै
र्मानाभावात् दृशि न हि भवेन्मानमन्यत् द्वितीयात्४३

बौद्धमतमाशङ्क्य निराकरोति आगन्तव्यमिति । हे क्रमाङ्क त्वदुक्त्या—न्नत्प्रयुक्तमादृक् सन्देशवाक्येन बोधितेन मादृक् पीडां ज्ञापितेनसरसिजदृशा कृष्णेनागन्तव्यमवश्यमिति शेषः, प्रत्यक्षातिरिक्तस्या प्रमाणत्वेन कथं मद्वाक्येन बोधः स्यात् इति वृथैव मद्गमनमित्याशङ्क्य निराकुरुते प्रत्यक्ष इति । प्रत्यक्षमप्रमाणं चक्षुरादिभिन्नं अनुमानोपमानशब्दात्मकं न प्रमाणं एतद्वाक्यं एतावत्चार्व्वाकादिवाक्यं न मानं न प्रमितिकरणमिति मानाभावान्नयन् विरहापत्तिभित्या सर्व्वैः स्वीकर्त्तव्यं हि यतः दृशि चक्षुषि द्वितीयादनुमानादन्यत् अन्य मानं न भवेत् न भवतीति समुदायान्नयः मानाभावादित्यस्य नयनविरहापत्तेरेवतन्नयः। नयनसिद्धौ चाक्षुषप्रत्यक्षमपि न सिद्धेत् इति नयनसिद्धिरावश्यकी तत् सिद्धश्च एतद्घट ज्ञानस्य करणत्वं त्वगाद्यजन्यप्रमात्वादित्यादिना सकरणत्वसिद्धौ त्वगादिकरणत्वबाधात् नयनकरणकत्व एव पर्य्यवसनात् तत्रानुमानस्य यदि न मानता तदा चक्षुषि चक्षुराश्रयेऽस्ये च

मानाभाव एव इति चक्षुषोऽसिद्धिः स्यात् इत्यनुमानस्याप्रमाणत्वं स्वीकार्यमित्याशयात् प्रत्यक्षातिरिक्तस्याप्रमाणता बाधकमप्रत्यक्षं न प्रमितिकरणमिति-वाक्यमप्रमाणमिति भावः, तथाच चक्षुरादि निष्प्रमाणक स्यात् तदाऽसिद्धिः स्यादित्यापत्त्याऽसिद्धत्वाभावेन निष्प्रमाणत्वाभावस्य सप्रमाणत्वस्य सिद्धिः, तत्रानुमानातिरिक्त प्रत्यक्षादेर्बाधेनानुमानस्य आदौ पर्य्यवसानाच्च स च बाधो दृशिना भवेत् मानमन्यद्द्वितीयादित्यनेन प्रदर्शित, त्वनुमानस्य द्वितीयत्वं प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाश्चत्वारि प्रमाणानीति सूत्रानुशासनादेव सेयमिति ॥ ४३ ॥

कमल के समान नेत्र वाले श्यामसुन्दर को तुम्हारे कहने पर यहाँ आना चाहिये । अप्रत्यक्ष प्रमिति करण अर्थात् प्रत्यक्षेतर ज्ञान का कारण है यह वाक्य पमाण नहीं है । नेत्रों में विरह की आसक्ति रूप भित्ति से सम्बन्ध स्वीकार करना ही पड़ेगा । प्रत्यक्ष प्रमाण में शाब्द ज्ञान प्रतिबन्धित होता है, केवल अनुमान प्रमाण ही ऐसा है, जो प्रत्यक्ष के आगे ठहरता है ॥ ४३ ॥

बौद्धस्यैतन्मतविटपिनो मूलमाच्छादितं स्यात्
मृद्भिस्तस्यानृतवचनतो यन्मया पूर्व्वमुक्तम् ।
यद्यस्माकं सततमतनोः सायकैः क्षुण्णदेहः
प्रामाण्ये स्यात् कुसुमविशिखोऽस्तीतिवाक्येन साक्षी।४४

ननु तथापि न शब्दस्य प्रमाणतासिद्धिरित्याह बौद्धेति यद्यस्माकं अतनोः कामस्य सतत क्षुण्णदेहः कुसुमविशिखोऽस्तीतिवाक्ये प्रामाण्य साक्षीणस्यात्तदा बौद्धस्य एतन्मतविटपिनो वृक्षस्य मृद्भिराच्छादितं स्यात् । किं मूलमिति तत्राह-तस्य कृष्णस्यानृतवचनतः मिथ्यावाक्यात् हेतो मया पूर्वं यदुक्तं पूर्व्वोक्तश्च तस्य अवश्यमेव इति स्पष्टा तेन कुसुमविशिख अस्तीति शब्दनिष्ट प्रामाण्यं शब्दप्रमाणत्व अस्ति साक्षी नियामक

अस्माकम् । एतेन देहस्य साक्षित्वाभावे बौद्धमतस्य मतं शरणं स्यात् । मृद्वे यागात् साक्षित्वे तु तन्मतं दुर्बलमिति भावः ॥४४

यह देखा गया है कि वृक्ष का मूल सदा मृत्तिका से ढका रहता है किन्तु मैंने जो पहिले कहा वह उनके मिथ्या वचन से घटित है । जो हमारे देह कामदेव के वाणों से जर्ज्जरित हो गया है । अतः कामदेव के वाण पुष्प के हैं इस बात को साक्षी कराने के लिये किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है ॥ ४४ ॥

मूर्खा एव क्षणिकमनिशं विश्वमाहुर्न धीराः
खेदोऽस्माकं हरिविरहजः सर्व्वदैवास्ति चित्ते ।
नान्यः शब्दो वचनमपि तत्तादृशं तस्य किन्तु
प्रेमैवास्मत् प्रियतमकृतं तच्च गोपाङ्गनासु ॥४५

इति महामहोपध्याय श्रीलश्रीकृष्णचन्द्र-
तर्कालङ्कारविरचितं पदाङ्कदूतं समाप्तम् ।

मूर्खा एव विश्वं क्षणिकं स्वोत्पत्तिद्वितीयक्षणवर्त्तिनाशप्रतियोगि अनिशं सर्वदा आहुर्न धीराः पण्डिता इति क्षणिकत्वे बाधमाह-यतो अस्माकं चित्ते हरिविरहजः खेदः सर्व्वदैवास्ते एवं अनिशवमत्रशब्दोऽपि न क्षणिक इति विभक्तिविपरिणामेनान्वयः,'शब्दक्षणादन्यस्थायीति सिद्धान्तः । अत्र हेतुवचनमपि तदिति कृष्णवचनमपि तत्स-र्वदैवास्ति चित्ते वर्तमानं कृष्णसाक्षी पलिता दृशमिति किन्तु तादृश-मे त किन्तु तादृश वस्तु प्रेमैव तच्चेति तब च क्षणिकं प्रेम गोपाङ्गनास्वेव नतु पुरस्त्रिषु इति भावः ॥ ४५ ॥

इति श्रीराधामोहनशर्म्मणा विरचिता पदाङ्कदूतविवृत्तिः समाप्ता ।

मूर्ख गण ही विश्व को निरन्तर क्षणिक करके कहा करते हैं, परन्तु पंडितों का यह मत नहीं हैं। हरि विरह से उत्पन्न हम सबका यह खेद चित्त में सर्वदा विराजमान रहता है। भावार्थ यह है यदि जगत् क्षणिक है तो विरह खेद क्यों सर्वदा रहता है। यदि जगत् क्षणकाल में नाशवान है तब अवश्य विरह खेद की स्थिति परक्षण में नहीं रहनी चाहिये। अतः जगत् क्षणिक है यह मूर्खों का वचन है। अन्य शब्द-प्रमाण से अर्थात् अन्य वचन परिपाटी से यह गम्य नहीं है। गोपांगनाओं में यह प्रेम प्रियतम के द्वारा किया जाता है अर्थात् प्रियतम का प्रेम ही इसका कारण है॥ ४५॥

अनुवादक–कृष्णदास

❀ ग्रन्थ समाप्त ❀